देवाधिदेव भगवान पार्श्वनाथ

मानव मात्र को अहिंसा पथ को आलोकित करने वाले
प्रातः स्मरणीय भगवान पार्श्वनाथ की अमर गौरव गाथा
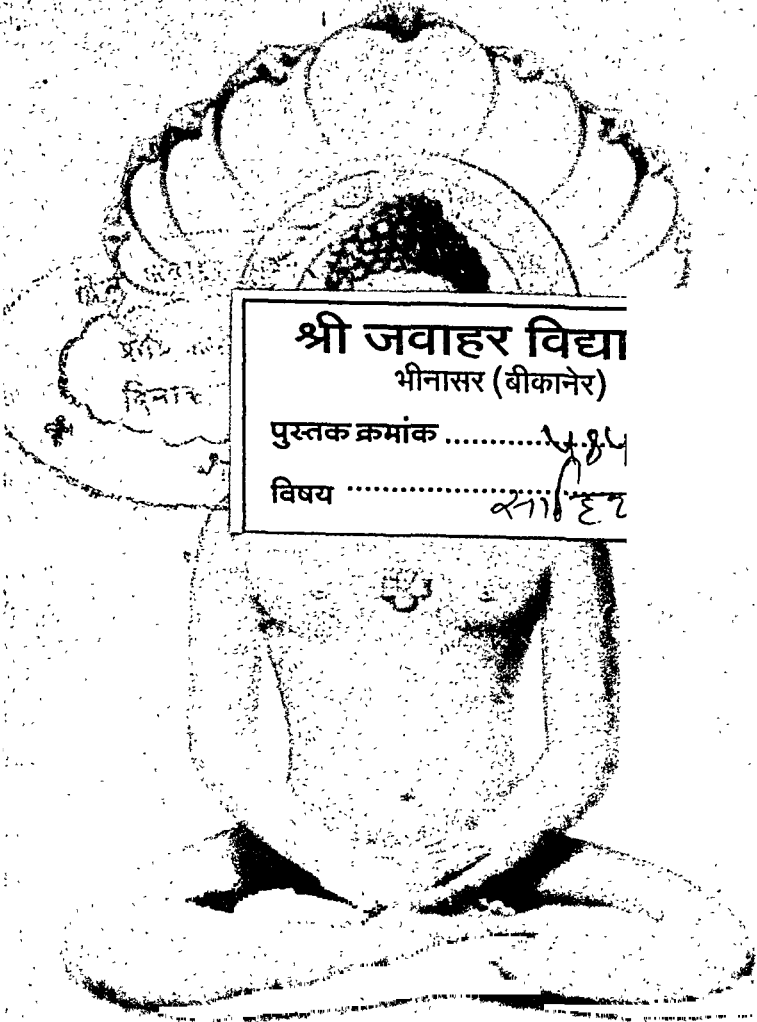
णमो अरिहंताणं

अरिहन्त भगवान को मेरा नमस्कार हो। विश्व में राग-द्वेष, काम, क्रोध आदि मनोविकार सबसे शक्तिशाली शत्रु माने गये हैं। लाखों करोड़ों योद्धाओं पर विजय पाने वाले विजेता भी इसके सामने नत-मस्तक हो जाते हैं। अतः ऐसे प्रबल शत्रुओं का नाश करने वाले अर्थात् राग-द्वेष का क्षय करने वाले महापुरुष को अरिहंत कहते हैं।

णमो सिद्धाणं

सिद्ध भगवान को मेरा नमस्कार हो। जिन महापुरुषों ने अपने साध्य को सिद्ध कर लिया है। कर्म बन्धन एवं कर्म जन्य उपाधियों से जो सर्वथा मुक्त हो गये हैं, उन्हें सिद्ध कहते हैं।

णमो आयरियाणं

आचार्य महाराज को मेरा नमस्कार हो। जो स्वयं आचार संपन्न हैं और संघ के अन्य साधुओं को आचार परिपालन की प्रेरणा देते हैं। संयम पथ के पथिक साधुओं को हित शिक्षा के द्वारा संयम में स्थिर करने वाले एवं संघ की मर्यादा को व्यवस्थित बनाये रखने वाले महापुरुष को आचार्य कहते हैं।

णमो उवज्झायाणं

उपाध्याय महाराज को मेरा नमस्कार हो। जो महापुरुष संघ के साधु, साध्वियों आगमों, शास्त्रों का अध्ययन कराते हैं, उन्हें उपाध्याय कहते हैं।

णमो लोएसव्वसाहूणं

लोक में स्थित सब साधुओं को मेरा नमस्कार हो जो महापुरुष ५ महाव्रतों का पालन करते हैं। और आरम्भ, परिग्रह, विषय-विकार, घर परिवार आदि से निवृत हो चुके हैं, उन्हें साधु कहते हैं।

★ यह पांच पदों को किया गया नमस्कार सब पापों को क्षय करने वाला है और सब मंगलों में प्रधान एवं श्रेष्ठ है। ★
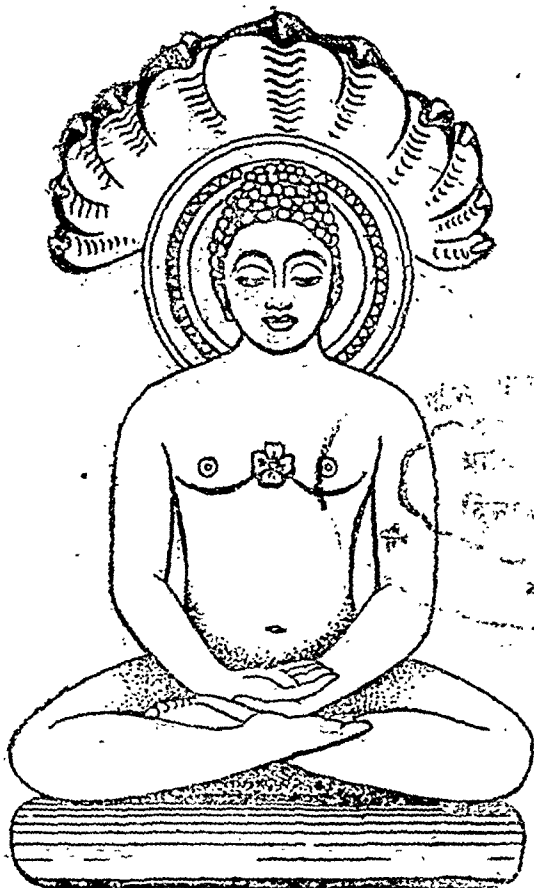
देवाधिदेव भगवान पार्श्वनाथ

भगवान वर्द्धमान महावीर स्वामी के २५०० वें

निर्वाण-समारोह के अन्तर्गत प्रकाशित

प्रभात पाकेट बुक्स द्वारा

लोकोपकारी पुस्तकमाला का दूसरा पुष्प

प्रस्तुतकर्ता : जयप्रकाश शर्मा

श्री सम्मेद शिखरजी सिद्धक्षेत्र
एक बार बन्दे जो कोई ।
ताहि नरक, पशु गति नहीं होई ॥
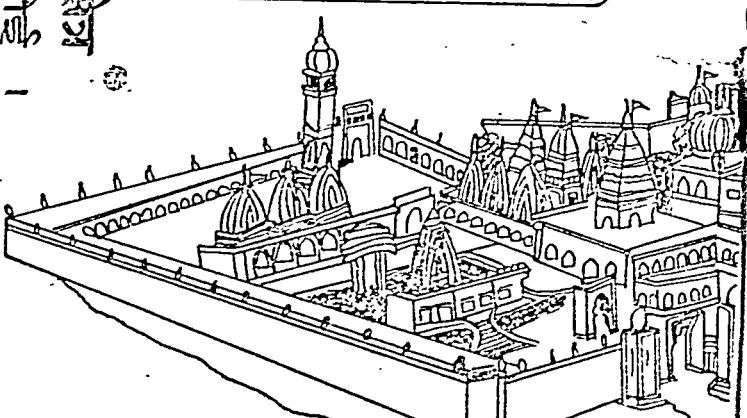
देवाधिदेव
भगवान
पार्श्वनाथ
जय प्रकाश शर्मा
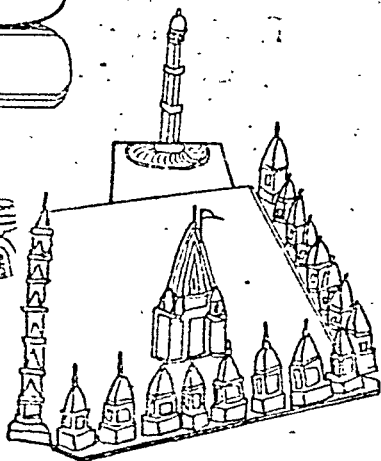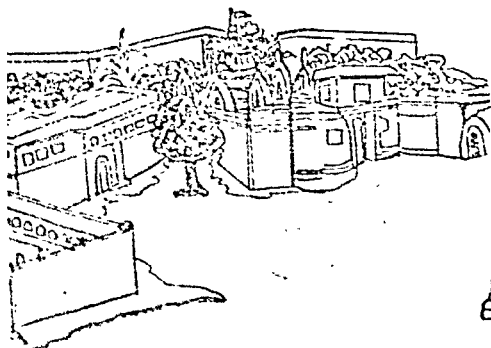
□ प्रकाशक :
प्रभात पाकेट बुक्स
हरीनगर, मेरठ शहर।
फोन नं० ५४७८

□ मुख्य वितरक :
सीक्रेट सर्विस कार्यालय एण्ड प्रेस
३३/२०, हरीनगर, मेरठ शहर।

□ प्रस्तुतकर्त्ता :
जयप्रकाश शर्मा

□ पुस्तक :
देवाधिदेव भगवान पार्श्वनाथ

□ मूल्य :
दो रुपया

□ मुद्रक :
सर्विस प्रेस

द्वितीय संस्करण

- हमारा देश आज कई नई समस्याओं में ग्रस्त है और उनमें सबसे बड़ी समस्या है आत्म निर्भरता की समस्या ! आत्म निर्भर होने के लिये जरूरी है कि विदेशों से आयात बन्द हो और निर्यात चालू हो । सीधा-सादा अर्थ है, आवश्यकतायें कम हो ।
- उच्च आदर्श ही हमारे अमोल-धन है । सत्य अहिंसा त्याग तप निष्टा ही हमारे जीवन की उपलब्धि है । इन्हीं आदर्शों के बल पर हमने विश्व के सबसे धनी और सबसे शक्तिशाली राष्ट्र की उपेक्षा को ललकारा है । उन्हीं आदर्शों के बल पर हमारा शोर्य पाकिस्तानी हमले के समय कुन्दन के समान निखरा है वही आदर्श हमारी पावन और अमोघ अस्त्र संपत्ति है ।
- उन आदर्शों से ही पूरा विश्व सुख की सांस ले सकता है । भगवान पार्श्वनाथ का समस्त जीवन उन्हीं आदर्शों की पूर्ति करता है । उन महान आदर्शों को पावन और पवित्र ढंग से विश्व के समक्ष उपस्थित करता है ।
- उस वक्त जब विश्व को इन आदर्शों की आवश्यकता है । जब हम स्वयं आत्म निर्भर होने जा रहे हैं और भगवान वर्द्धमान का २५०० वां निर्वाण दिवस मनाने जा रहे हैं तो उस विशिष्ट गौरव ग्रन्थ माला के दूसरे पुष्प के रूप में प्रस्तुत है 'देवाधिदेव भगवान पार्श्वनाथ' का पवित्र चरित्र । प्रस्तुत कर रहे हैं यशस्वी उपन्यासकार श्री जयप्रकाश शर्मा ।

इतिहास सदैव से अपने आपको दोहराता आया है
घटनायें इस बात की साक्षी रही है कि हमारा देश
हमारे देश का गौरव, हमारे महानतीर्थंकरों
की गरिमा ने सदैव विश्व को जियो और
जीनें दो का सिद्धान्त सिखलाया है
और अब जब पुनः भारत
की वीरंगना क्रान्ति शिखा
इंदिरा गांधी
ने
आहवान किया हैं
कि हमारी सभ्यता को
हमारी पुनीत पावन संस्कृति को
और देश के उच्च आदर्शों को इतना
सशक्त होना है कि प्राणीमात्र में समता
ममता और अहिंसा का भाव उपस्थित हो सके
पूरे ऐशिया महाद्वीप में शान्ति साम्राज्य स्थापित
हो सके तो दलित कुंठित आदि वासियों से लेकर
चर अचर को अपनी वृद्ध कृपाओं से अभिभूत
करने वाले प्रथम इतिहास समस्त राष्ट्र पुरुष
और तेइसवें तीर्थंकर देवाधिदेव भगवान
पार्श्वनाथ का उज्जवल विमल चरित्र
प्रस्तुत है।

प्रेरणा के स्त्रोत

प्रभात पाकेट बुक्स मेरठ द्वारा आयोजित भगवान वर्द्धमान के पच्चीसवें निर्वाण समारोह के अन्तंगत प्रकाशित गौरव ग्रन्थ माला का दूसरा पुष्प प्रस्तुत है। पहला पुष्प कुण्डल पुर के राजकुमार की अत्याधिक सफलता और प्रियता इस सिद्धान्त को पुनः प्रतिपादित करती है कि विश्व और खासतौर से भारत की जनता अपने इन महान् धर्म तीर्थ करों के प्रति कितनी श्रद्धावान है और उसे इन सिद्धान्तों की कितनी आवश्यकता है। इस बीच हमें निरंतर प्रशंसा और उत्साह वर्धक पत्र मिलते रहे हैं। मगर कुछ लोगों का सक्रिय सहयोग एवं पावन परामर्श भी मिला है। उनके प्रति आभार प्रकट करते हुये मैं उन प्रेरणा के स्त्रोतों में से केवल वे नाम उल्लेख कर रहा हूँ जो निरन्तर मुझे इस दिशा में कार्य करने के लिये प्रोत्साहित करते रहे:—

—केन्द्रीय मन्त्रीमण्डल में पूर्ति मन्त्री श्री जगन्नाथ प्रसाद पहाड़िया
—दिल्ली स्थित भारतीय ज्ञानपीठ के श्री लक्ष्मीचन्द जैन
—नागपुर के श्री जयपाल सिह जैन
—राजाटायज के श्री रमेश चन्द जैन और राजा मैकेनिकल के डा० कैलाश चन्द जैन।
—भोपाल के श्री कोमल चन्द जैन
—इन्दौर स्थित वीरेन्द्र पुस्तकालय के सभी मित्र वन्धु
—ग्वालियर स्थित मदन लाल जैन

और जवलपुर स्थित वसस्टेंड के श्री कैलाश, प्रकाश, अभिनन्दन और वहां की वरिष्ठ विक्रय संस्था गंगा और गणेश बुक डिपो।

विनीत—

जय प्रकाश शर्मा

एफ.१०/३४, कृष्णा नगर, दिल्ली ५७

विषय विवरण

१ | सम्मेद शिखर पुकार रहा है...

स्थिति वदली है। मेरा देश, आपका देश, सबका देश,भारत करवट ले रहा है। जिस वक्त तक यह पुस्तक आपके हाथों में होगी हम विजय पर्व मानकर एक नई मिशाल पैदा कर चुके होंगे वर्षो की दासता के वाद सन् १९४७में भारत के तत्कालीन शासक जव अपना वोरिया विस्तरा समेट कर वापस हुए थे तो भारत का विभाजन करके हिंसा और वैमनस्य के जलते अंगारों पर एक देश की रचना हुई थी। और उसके द्वारा भारतीय सिद्धान्तों को कुचलने की साजिश में विखरे कुछ स्वार्थी किन्तु शक्ति शाली राष्ट्रों ने एक कुचक्र रचा था। जो मानवीय सभ्यता को भूल गये हैं जहां के नागरिक हिप्पी और जहां उत्सव हत्या और दुर्घटना के माध्यम से आयोजित होते हैं। वे भारत को अभी भी गुलाम और उपनिवेश के अन्दर जकड़ा भारत समझ रहे थे। यही कारण था कि हम पर नित नये ढंग से ताना कारी की जाती थी और ऐसे अवसर तलासे जाते थे जव भारत को भारतीय जनता, और भारतीय जनता के सिद्धान्तों को नीचा दिखाया जाये। मगर स्थिति वदली और पिछले चौदह दिनों के युद्ध ने हमें न केवल विजयी घोषित किया अपितु उन सिद्धान्तों पर भी मंगल विजय के पुष्प चढ़ाये जो हमारे अतित गौरव की थाती है। उस वक्त हमारी प्रधान मंत्री ने एक ही वात कही थी कि यह हमारे सिद्धान्तों की विजय हैं और भारत को यह दिखला देने के लिये कमर कस लेनी है कि हमारे सिद्धान्त जो सत्य अहिंसा,तप त्याग और निष्ठा पर आधारित हैं और उन सिद्धान्तों पर ही विश्व कायम रह

सकता है। यह एक संयोग है कि भारतीय स्वतन्त्रता की जब रजत जयन्ती का सुअवसर आ रहा है तो उसके कुछ दिन बाद उस महापुरुष के निर्वाण की भी २५०० वीं जयन्ती आ रही है जिसने पहली बार उन सिद्धान्तों की मुहर लगाई जो मानवता, भाई चारे और कण कण में व्याप्त दया पर आधारित है। उन भगवान महावीर वर्द्धमान की अमर वाणी से चर अचर में पहुंचा इसका दायित्व उन सबको है, जो अपने आपको भारतीय कहते हैं। क्योंकि अहिंसा की अमोघ वाणी भारत की वाणी है और उस वाणी से प्रशस्त कल्याण कारी पथ ही सार्व जनिक कल्याण भरा पथ है। यह वाणी, यह रास्ता, यह अमोघ अस्त्र भगवान महावीर को जिनकी विरासत से मिला उनमें भगवान पार्श्व नाथ का नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है। इस लिये कि वे चौवीस तीर्थ करों में तेईसवे तीर्थ कर थे और वे पुराण के कथा पुरुष न होकर ऐतिहासिक पुरुष थे। उनकी यश कीर्ति भारत के भिन्न भिन्न स्थानों में पुण्य की धवल छाया किये हुए हैं।

सम्मेद शिखर।

यही है कि वह पावन तीर्थ जिसकी गरिमा में उस महान सन्त का तपनिष्ट अरहंत और तीर्थ कर की यश कीर्ति आकर सिमट गई है। वही क्यों बंगाल में भी आजिय गंज, देवला मीरा, कांटा बोनिया, मान भूम, सिंह भूम, वीर भूम और बाकुड़ा भी। यहीं के आह्वान से बंगला देश में स्वाधिनता की रण भेरी बजी और अहिंसा ने हिंसा पर, वीरता ने कायरता पर, त्याग ने विलासता, दया ने क्रुरता पर,संयम ने सैवरजेट और पेन्टन टैंको पर, विजय की वह गहरी छाप लगाई कि अब विश्व जान गया है कि भारत की विरासत में वे महान विभूतियां हैं। जिनके चरण से पवित्र भारत की यह भूमि वीर प्रसवा तो है मगर यहां हिंसा का जवाब अहिंसा से देने का प्रयास किया जाता है। विश्व का कल्याण

केवल इसमें है कि वह इन सिद्धान्तों को जाने उस महान विरासत का भिक्षृक बने जिसके सामने सुख रहता है न दुख। हम तो हर मोर्चे पर, हर संघर्ष में विजगी रहते हैं। उसका एक मात्र कारण है हमारी इन महान विभूतियों की महान गरिमा।

सम्मेद शिखर की पावन धरती बुलाती है उन सभी व्यक्तियों को जो दुखी हैं, परेशान है, अन्तिम जन्म जरा से पीडीत हैं और उस धरती पर पहुँचते ही लगता हैं कि जैसे मन पुकार-पुकार कर कह रहा है।

काहे को देश दिशान्तर धावत काहे रिझावत इंद्र नरिंद्रा।
काहे से देवी औ-देव मनावत, काहे को शीष नवावत चन्द ॥
काहे को सूरज सो कर जोरत, काहे निहोरत सूढ़ मुनिन्द।
काहे को सौच कर दिन रैनत, सेवत क्यों नहीं पार्श्व जिनेन्द्र

ब्रह्मगर्वनी से उद्वत श्री भगवतीदास' भैया का यह पद कोई अतिशयोक्ति नहीं अपितु अतिदुखी भक्त की वह श्रद्धा है जिसे वह अपने भावों में व्यक्त कर देना चाहता है। और अनायास खिच आता है उस पुण्य भूमि की ओर, जिस पर भक्ति के सुमन चढ़ाने के लिये निरन्तर यात्रियों का ताता लगा रहता है और उसमें पढ़े लिखे विश्व जन ही नहीं' बल्कि बिहार बंगाल की और सिंह भूम, मान भूम तथा देव भूमि की वह आदि वासी जन जातियां भी होती हैं जिनका एक अकेला पार्श्वनाथ कभी भगवान, कभी रहवर, कभी नेता और कभी मारंगकुरन है, मारंगकुरन उनका, वह पहाड़ पर स्थित देवता है जो सब कुछ देखता है, सब कुछ जानता है। मगर बड़ा ही परमदयालु, परम दयावानं है और उसकी यश कीर्ति मे ही वे जीवन काटते हैं। उस महान और अगांध श्रद्धा का जन्म यूं ही नहीं हो जाता। वह महान गौरव, वह अपार श्रद्धा उस पावन पवित्र तीर्थंकर की याद दिलाती है जिसने सबसे पहले ढोंग की पोल खोली। जिसने बताया कि तप

का अर्थ होता है मन की शुद्धि, कर्मों का समाप्त होना । तप का अर्थ दिखावा या ढोंग नहीं होता । वे भोले भाले जीव जो न जाने कब से इस संत्रस्त जीवन का शिकार होते आ रहे है न जाने कब से जिन्होंने ढोंग को धर्म के रूप में पाकर अपना जीवन कुमार्ग की ओर अग्रसर कर लिया था, वे इस नई व्याख्या, नये चमत्कार को देखकर अभिभूत हो उठे । उन्हें लगा कि अब तक जीवन अमुक्त पथ की उन शलाकाओं में कैद था, वह अब मुक्त होने को आतुर हो उठा है ।

सम्मेद शिखर की इस धवल और जगमग कीर्ति के उन्नादक भगवान पार्श्वनाथ का निर्मल चरित्र गौरव की गाथा तो है ही । देवाधिदेव भगवान पार्श्वनाथ की अलौकिक साधना ने जिस पथ को अग्रसर किया था, उसकी राह पर चलकर भारत और पूरे विश्व को चौबीस वे तीर्थंकर भगवान वर्द्धमान का सानिन्ध प्राप्त हुआ था और कोटि कोटि जीव अपनी योनि सुधार कर कर्मों से मुक्त होकर जन्म-जरा-मृन्यु के वन्धनों से मुक्त हो गये । इस परम पावन उज्जवल चरित्र की झांकी इस पुस्तक में प्रस्तुत की जा रही है । यह झांकी उस वक्त तक अधूरी ही रहेगी जब तक हमें यह वोध न हो जाये कि तीर्थंकर कौन हो सकते हैं ।

शास्त्रों का मत है कि जिन जीवों ने अपने पूर्ण और सम्यक केवल ज्ञान से समस्त पदार्थो को देख लिया है, जो शिव स्वरूप हैं और त्रिभुवन के सिर पर शंख रूप है, अर्थात जिसके द्वारा मुक्ति हो सके तथा जा सके । इसका अर्थ हुआ कि तीर्थंकर वे महान पुरुष होते हैं जो आत्म कल्याणकारी तीर्थो का प्रवर्तन करते हैं । इसी कारण उन्हें तीर्थंकर कहा जाता हैं ।

धर्म तीर्थो की स्थापना इन्हीं तीर्थंकरो द्वारा की जाती रही है और उन्हीं के द्वारा संसार के प्राणी समस्त दुख के सागर से

तैर कर सुख के मुक्त द्वार तक पहुंचते हैं। तीर्थंकर वास्तव में ये हैं—

☐ जो महान आत्म कल्याणकारी तीर्थों की स्थापना करते हैं।

☐ जिन्होंने अपने सम्यक केवल ज्ञान से समस्त पदार्थों को देख लिया है।

☐ शिव स्वरूप।

☐ धर्म तीर्थों के संस्थापक।

☐ जब नक्षत्र सर्वोच्च पराकाष्टा पर पहुँचता है तो त्रिभुवन सिर शेखर तीर्थंकर जन्म लेते हैं।

एक महापंडित ने इस विषय में लिखा है—

तीर्थंकर-पद महा भाग्यशाली महापुरुष को ही प्राप्त होता हैं। सामान्य सर्वत्र सर्व दर्शी केवली साधू हो जाना सुगम है। प्रत्येक तीर्थंकर के समय में वैसे सामात्य केवली असंख्यतीत होते हैं। किन्तु त्रिभुवन के महापुरुषों में मुकुटमणी रूप तीर्थंकर होना सुगम नहीं है। धर्म चक्रतित कारक महान पद अनेक जन्मों के श्रम और योग साधना से नसीब होता है। मानव जन्मगत पूर्णतः को प्राप्त करके ही तीर्थंकर पदवी मिलती है। तीर्थंकर इसी लिये ही अनुपम है। उन जैसा और कोई नहीं है। धर्म तीर्थ के संस्थापक होने के कारण वह बड़े बड़े आचार्यो द्वारा अभिनद्य हैं। वह लोक के सर्वोपरि सर्वतोभद्र कल्याणकर्ता जो हैं। स्वामी समन्त भद्राचार्य उनके तीर्थ को सर्व आपदाओं का अन्त करने वाला सर्वोदय तीर्थ घोषित करके उनकी महानता को व्यक्त करते हैं।

(सर्वापदा मन्तकरं तिरैनं सर्वोदयं तीर्थ निदं त्वमेव।) लोक कल्याण के सर्व से नेता होने के कारण ही वे सर्वोत्तम हैं!

आगे कहा गया है। मानव अनेक जन्मों में सत्य और अहिंसा

की साधना करके ही अपने को इस योग्य बना पाता है कि सत्य और अहिंसा का प्रकाश उसके रोम रोम से प्रगट हो। इन्द्रियों की दासता का जुआ वह उतार फैंक देता है। राग द्वेष को वह जीत लेता हैं और जिनेन्द्र बन जाता है। उसके शरीर के प्रमाणु भी योग निरत पूर्णता और विशुद्धता को पाकर शुद्ध कार्बन पुद्‌गल स्कंध रूप हीरे की प्रभा को भी मन्द कर देते हैं। सहस्त्राधिक सूर्य के प्रकाश को भी उनकी प्रभा लज्जित करती है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य गुण हैं—

× महान् सुभग सुन्दर।

× समचतुरस ।

× सस्यग्यी।

× अतुल बल एवं अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन एवं अनन्त सुख।

× जीवन मुक्त सच्चिदानन्द।

× शुद्ध आत्मा।

× अतंरग रागद्वेष से मुक्त।

× भूख, प्यास, जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, भय—आश्चर्य, पसीना, आदि से मुक्त।

× निकट आधि-व्याधि की समाप्ति।

× सौ सौ योजन तक दुर्भिक्ष एवं अकाल की समाप्ति।

× आस-पास के जीव वैर-भाव को छोड़कर प्रेम मय वातावरण में लिप्त हो जाते हैं।

× और देवताओं द्वारा समवशरण। समवशरण क्या होता है! उच्च जीवों (यथा-देवों) द्वारा तीर्थंकारों को धर्मादेश प्राप्त करने के लिये जो सुन्दर सभाग्रह बनाये जाते थे। वे समवशरण कहलाते थे। ये ऐसे स्थल होते थे जहां जीव पहुँचकर समतासुख का आनन्द प्राप्त करता था।

न कोई नीच, न कोई ऊंच। न रंक, न राजा। न शत्रु, न दोस्त। न स्त्री छोटी, न पुरुष बड़ा। क्या काले, क्या गोरे। सभी को अपार आनन्द और सुख मिलता है। इस प्रकार वह ऐसी सभा होती थी जहां सत्य का प्रकाश होता था और समता का अपार प्रदर्शन। जब विश्व के शासक अपनी माताओं को पत्नी बनाकर हिंसा और विलासता की मस्ती में सैंकड़ों मनुष्य झोप-ड़ियों में दिये जलाकर मनोरंजन करते थे तब हमारे पूर्वज उन महान तपस्वी संतों से प्रभावित होकर स्यावह और जंगल सभी पर समान रूप से दया वाले होते थे। और उसका संचालन करते थे तीर्थंकर। जिनके विषय में लिखा गया है—

तित्थयरा चउवीस वि केवलनाणेण दिट्ठसव्वट्ठा।
पसियंतु सिवसरूवा तिहुवणसिरसेहरा मज्झं॥

(अर्थात् जिन्होंने केवल ज्ञान से समस्त पदार्थों को देख लिया है—जो शिव स्वरूप है। और त्रिभुवन के सिर पर शेखर रूप हैं, क्योंकि वह अद्वतीय हैं, ऐसे चौबीस तीर्थंकरों का वरद हस्त सदा वांछनीय है।—वीरसेन कृत)

इस प्रकार तीर्थंकर की अन्य विशेषतायें हुई—

- ☐ परमोत्कृष्ट आत्म विशुद्धि
- ☐ असीम योग साधन
- ☐ सोलह कारण आत्म भावनाओं में चरम सफलता।

सोलह कारण विशुद्ध दर्शन भावनायें इस प्रकार है। इनका पालन करना पहली सीढ़ी होती है।

पहली भावना : दर्शन विशुद्ध

सम्यद ज्ञान के चरम उत्कर्ष पर जो आत्मदर्शन होता है, उसे ही विशुद्ध दर्शन की संज्ञा दी जा सकती है। इस आत्मानुभव में निरन्तर उत्तरोत्तर वृद्धि ही दर्शन विशुद्धि की परिभाषा है।

वास्तव में सभी आत्म भावनायें आत्म विशुद्धि को पाने के लिये नियत विभिन्न है। मगर विशुद्ध दर्शन मूल प्रेरक है। एक प्रकार से यह भावनाओं की मुकट मणी जो आत्मा के स्वरूप को पहचानने में सहायक सिद्ध होता है। अरहंत मार्ग की ओर अग्रसर जीव जब अपनी आत्मा को पहचानता है और उसके स्वरूप के विषय में अपने ज्ञान की वृद्धि करेगा, तो उसका अन्तरमन निर्मल होता जायेगा और जब यह भावना सम्पन्न होकर आत्मा की सम्पत्ति हो जाती है तो आत्मानुभव में निरन्तर वृद्धि होती जाती है। इसी को दर्शन विशुद्धि का नाम दिया जाता है।

दूसरी भावना : विनय सम्पन्नता

विनय वीरों का भूषण है। पूज्य पुरुषों के प्रति विनय भाव रखना आवश्यक है। मगर जो संसार का पथ प्रदर्शन करते हैं, प्राणी समुदाय को सत्य और अहिंसा का कल्याणकारी मार्ग सुझाते हैं, उनके मन में तो चर अचर के प्रति ही विनय का भाव रहता हैं और इसी विनय के भाव से वे संसार में विनय पूर्वक व्यवहार का नया मान दण्ड स्थापित करते हैं और अपने निकट के सभी व्यक्तियों को, प्राणी मात्र को विनय मार्ग की ओर ले जाते हैं।

तीसरी भावना : शील सम्पन्नता

शील क्या है ? यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। सांसारिक सुखों में आकर्षण सबसे बड़ी देन और सबसे बड़ी व्याधा है। इस व्याधा को देन बनाने के लिये मन वचन काय से ब्रह्मचर्य का पालन करना और अतिरेक भाव को रोक कर संसार की सभी स्त्रियों को माता और बहन जैसा आदर देना शील सम्पन्नता की पहली निशानी है। शील सम्पन्नता ग्रहस्थ को सद्-

स्थ आदि में परिणित कर देता है।

चौथी भावना : ज्ञान का उपयोग

शास्त्रों को पढ़ने और पढ़ाने से उपदेशों के सुनने और सुनाने तथा आत्म चिन्तन करने से जो ज्ञान प्राप्त होता है, उस ज्ञान ा यथा शक्ति उपयोग ही आत्मा के विषय में सच्ची जानकारी सकता है। आत्मा सम्बन्धी इस ज्ञान से मनन और चिन्तन में पार सफलता मिलती है। भावना यह रहे कि इस ज्ञान का पयोग आत्मशुद्धि और आत्म दर्शन के लिये होता रहे तो इस ावना को बल मिलता है और यह भावना अन्य विषयों में तथा न्य भावनाओं में सहायक होती है। आत्म ज्ञान चौथी भावना है।

ंचवी भावना : संवेग (सांसारिक कार्यों से विरक्ति)

संसार के कार्य तो चलते ही रहते हैं। जो पैदा हुआ है उसे मरना है। जो बना है उसे बिगड़ना है। जिस स्थान पर कभी मांगलिक गीतों से गुंजित शहनाई बजती है कहीं मृत्यु का मातम भी सुनाई देता है। जो होना है अवश्यंभावी है उसके लिये ममत्व कैसा? यही कारण है कि तीर्थंकर के पद की ओर अग्रसर जीव संसार से विरक्त रहते हैं और सांसारिक सुख दुख में ममत्व प्रकट नहीं करते। संसार और सांसारिक कार्यों से विरक्त रहना ही संवेग कहलाता है।

छटी भावना : यथा शक्ति त्याग

त्याग अरहंत पद की ओर अग्रसर प्राणियों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। जिसका अर्थ होता है अकिंचन होना। अपने पास कुछ भी न रखना। जो लोग शक्ति को न छिपाकर यथा शक्ति त्याग धर्म का पालन करके क्रोध, मान, माया, लोभ जैसी

कषायों का परित्याग करके अकिंचन हो जाते हैं। उन्हें धन और धान्य से क्या लेना ? साधु जीवन में तो परमार्थ ही परमार्थ रहता है तभी तो कहा गया है—

साधू बड़े परमार्थी ज्यू धन परसे आयें।
तपन बुझाये और की अपनी पाराज लायें॥

अतः अकिंचन होना सबसे बड़ा गुण माना जाता है। दूसरे विषय में कहा जाता है कि आप इस भाव को लेकर बैठ जाओ कि:—

अकिंचनोऽहं मित्या स्न्तोक्याधिपतिर्भवैः।
योगिगम्य तव प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः॥

गुण समन्त भद्राचार्य का यह कथन इस बात की पुष्टि करता है कि ऐसा विचारना चाहिये कि युक्त आत्मा के अतिरिक्त संसार में परमाणु मात्र भी मेरा कहीं कुछ नहीं है। मैं हूँ— अपने स्वरूप से हूँ। अपने ही स्वरूप से परिणमता हूँ ऐसा अपने आपको अकिंचन भाव को अपने प्रत्यय में लेकर कुछ क्षण के लिये विश्राम से बैठ जाओ। बस यह त्रिलोक्य अधिपति बनने का उपाय है।

सातवीं भावना : शक्ति भर तप

इन्द्रियां शरीर सुख और आत्म दुख की परिचायक हैं। इनको वश में रखना ही तप कहलाता है। संयम इस तप का दूसरा रूप है। संयम शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है।

सम और यम। सम का अर्थ सम्यक् और यम का भाव दमन। अर्थात सम्यक रूप से दमन करना।

किसका दमन करना—जो आत्म भावना में विघन और बाधा उपस्थित करे। इसी का नाम है सयम, यह सयम निम्न वृतो में समाविष्ट है—

१. पांच महाव्रत
२. पांच समिति
३. तीन गुप्ती

और जो प्राणीजन समस्त प्रकार के विषय कषाय आदि से प्रथक होकर अपने आप में वृताकार रूप से नियत रहते हैं यही उत्तम सयम कहलाता है। इसमें प्रमुख है इन्द्रिय संयम। इन्द्रियां प्रमुख हैं—

१. स्पर्श
२. जिव्हा (रसना)
३. घृणा
४. चक्षु
५. कर्ण

और छटा है मन।

इन्द्रियां वास्तव में मनुष्य की प्रकृति का प्रतीक है जो उसे कर्म आदि के वंध से प्राप्त होती हैं, ऐसी स्थिति में प्राणी केवल सुखकर स्पर्श, सुखकर दृप्यावली, जीभ को अच्छे लगने वाले पदार्थों के प्रति अभिरूचि और केवल कर्ण प्रिय संगीत आवाज एवं स्वर सुनकर ही मन को प्रसन्नता मिलती है। मगर यह झूठी प्रशंसा कितने दिन चल सकती है। असुखकर स्पर्श, असुख कर गंध, असुखकर दृष्यावली, असुखकर पदार्थों के स्वाद और असुखकर स्वर अधिकांश रूप से मिलता है। और इन्द्रिय विषय सुख तो अपने में वैसे ही अपार है। न सुखसार पूर्ण हैं, न दुख स्थायी। मन समस्त इन्द्रियों का शासक है। किसी भी इन्द्री के विषय में चर्चा करना, अभिलाषा करना संयम के विपरीत है। इन सभी का त्याग ही संयम है। जो इन्द्री सुख को नहीं छोड़ता वह संयम कहां पाता है और जो सयम नहीं पा सकता वह तो वास्तव में अपने आपको ठगता है।

संसार के कहे जाने वाले कुछ धर्मों में इन्द्री सुख की भरपूर व्यवस्था है। हमें यह कहने में कतई संकोच नहीं है, कि वे सिर्फ दिखावे मात्र के लिये ही धर्म का पालन करता है। और उनका धर्म सांसारिक व्यवसाय है। तभी तो एक स्थिति ऐसी आई थी जब धन से परलोक सुधारने के सर्टिफिकेट एवं प्रमाण पत्र मिलते थे और आज उनका धर्म सुबोध धन सम्पन्न होते हुये भी पूरी ऐशिया से निष्कासित होने की स्थिति में है। हमारा इस विषय में यह मत कतई नहीं है कि उक्त धर्म में कोई आलोच्य कथन है। आलोच्य तो धर्म के वे मताधिकारी हो सकते हैं जो इस बात को भूलते जा रहे हैं कि सांसारिक सुख अस्तित्वहीन है। क्षणिक हैं और उन क्षणिक सुखों के लिये मनुष्य अपने जीवन की अपार धन सम्पदा क्यों खर्च करें। क्यों वह उन सांसारिक जंजालों में फंसे जिसकी मुक्ति की वह कामना करता आया है।

तीर्थंकर निम्न इन्द्रियों पर संयम रखता है जैसे—

☐ द्रव्य इन्द्री ☐ भाव इन्द्री ☐ विषय इन्द्री

द्रव्य इन्द्रियां—ये केवल जड़, मूर्तिक और पुद्‌गल रूप होती हैं। इनसे प्रथक रहना ही आत्मा का स्वभाव है।

भाव इन्द्रियां—खंड ज्ञान को ही भाव इन्द्रियों की संज्ञा दी जा सकती है।

विषय-इन्द्री—इनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। इन इन्द्रियों का दमन प्राणी संयम से संभव है जो निम्न प्रकार के ६ कायों को छोड़कर हो सकता है—

☐ पृथ्वीकाय ☐ वायुकाय

☐ जलकाय ☐ वनस्पतिकाय

☐ अग्निकाय ☐ त्रसकाय

तो शक्ति भर त्याग सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है।

सातवीं भावना : यथा शक्ति तप

तप क्या है ? सांसारिक क्षणिक सुखों से अपना ध्यान हटा
(. सांसारिक सुखों में अपना मन लगाना ही तप है ।

इसके अलावा निम्न अन्य भावनाये इस प्रकार हैं—

आठवीं भावना : साधू समाधि ।

नोंवीं भावना : वैभव वृत्य ।

दसवीं भावना : अर्हंत भक्ति ।

ग्यारवीं भावना : आचार्य भक्ति ।

बारहवीं भावना : बहुश्रुत भक्ति ।

तेरहवीं भावना : प्रवचन भक्ति ।

चौदहवीं भावना : आवश्यकापरिहान

पन्द्रहवीं भावना : मार्ग प्रभावना ।

सोलहवीं भावना : वात्सल्य ।

उपरोक्त भावनाओं का विस्तार पूर्वक उल्लेख यथा स्थान किया गया है. देवाविदेव भगवान पार्श्वनाथ की मुमुक्ष स्थिति इतनी दृढ़ थी कि उन्हें सरलता से तीर्थंकर पदवी प्राप्त हो गई थी और उनके केवल ज्ञान के समय उनके पूर्व जन्म के सूकर्मों ने बड़ी सहायता की थी । यह सब कार्य सम्पन्न करके भगवान पार्श्वनाथ को जब यह आभास हुआ कि उनका कार्य पूरा हो गया है और जब उन्हें मालूम हुआ कि उनकी आयु का एक माह शेष रह गया है तब वे विहार बन्द करके सम्मेद शिखर पर (विहार प्रान्त के पर्वत शिखर) छत्तीस मुनियों के साथ प्रतिमायोग धारण करके विद्यमान हो गये थे श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन प्रातः काल के समय जब विशाखा नक्षत्र था । समस्त कर्मों का क्षय हो जाने से मोक्ष में अविचल रूप से विराजमान हो गये । वह शिखर पावन हो गया और उसकी पावनता की रज कण में आज भी वह

संसार के कहे जाने वाले कुछ धर्मों में इन्द्री सुख की भरपूर व्यवस्था है। हमें यह कहने में कतई संकोच नहीं है, कि वे सिर्फ दिखावे मात्र के लिये ही धर्म का पालन करता है। और उनका धर्म सांसारिक व्यवसाय है। तभी तो एक स्थिति ऐसी आई थी जब धन से परलोक सुधारने के सर्टिफिकेट एवं प्रमाण पत्र मिलते थे और आज उनका धर्म सुबोध धन सम्पन्न होते हुये भी पूरी ऐशिया से निष्कासित होने की स्थिति में है। हमारा इस विषय में यह मत कतई नहीं है कि उक्त धर्म में कोई आलोच्य कथन है। आलोच्य तो धर्म के वे मताधिकारी हो सकते हैं जो इस बात को भूलते जा रहे हैं कि सांसारिक सुख अस्तित्वहीन है। क्षणिक हैं और उन क्षणिक सुखों के लिये मनुष्य अपने जीवन की अपार धन सम्पदा क्यों खर्च करें। क्यों वह उन सांसारिक जंजालों में फंसे जिसकी मुक्ति की वह कामना करता आया है।

तीर्थंकर निम्न इन्द्रियों पर संयम रखता है जैसे—

☐ द्रव्य इन्द्री ☐ भाव इन्द्री ☐ विषय इन्द्री

द्रव्य इन्द्रियां—ये केवल जड़, मूर्तिक और पुद्गल रूप होती हैं। इनसे प्रथक रहना ही आत्मा का स्वभाव है।

भाव इन्द्रियां—खंड ज्ञान को ही भाव इन्द्रियों की संज्ञा दी जा सकती है।

विषय-इन्द्री—इनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। इन इन्द्रियों का दमन प्राणी संयम से संभव है जो निम्न प्रकार के ६ कायों को छोड़कर हो सकता है—

☐ पृथ्वीकाय ☐ वायुकाय
☐ जलकाय ☐ वनस्पतिकाय
☐ अग्निकाय ☐ त्रसकाय

तो शक्ति भर त्याग सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है।

सातवीं भावना : यथा शक्ति तप

तप क्या है ? सांसारिक क्षणिक सुखों से अपना ध्यान हटा कर सांसारिक सुखों में अपना मन लगाना ही तप है।

इसके अलावा निम्न अन्य भावनायें इस प्रकार हैं—

आठवीं भावना : साधू समाधि ।

नोंवीं भावना : वैभव वृत्य ।

दसवीं भावना : अर्हंत भक्ति ।

ग्यारवीं भावना : आचार्य भक्ति ।

बारहवीं भावना : बहुश्रुत भक्ति ।

तेरहवीं भावना : प्रवचन भक्ति ।

चौदहवीं भावना : आवश्यकापरिहान

पन्द्रहवीं भावना : मार्ग प्रभावना ।

सोलहवीं भावना : वात्सल्य ।

उपरोक्त भावनाओं का विस्तार पूर्वक उल्लेख यथा स्थान किया गया है देवाधिदेव भगवान पार्श्वनाथ की मुमुक्ष स्थिति इतनी दृढ़ थी कि उन्हें सरलता से तीर्थंकर पदवी प्राप्त हो गई थी और उनके केवल ज्ञान के समय उनके पूर्व जन्म के सुकर्मों ने बड़ी सहायता की थी । यह सब कार्य सम्पन्न करके भगवान पार्श्वनाथ को जब यह आभास हुआ कि उनका कार्य पूरा हो गया है और जब उन्हें मालूम हुआ कि उनकी आयु का एक माह शेष रह गया है तब वे विहार बन्द करके सम्मेद शिखर पर (विहार प्रान्त के पर्वत शिखर) छत्तीस मुनियों के साथ प्रतिमायोग धारण करके विद्यमान हो गये थे श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन प्रातः काल के समय जब विशाखा नक्षत्र था । समस्त कर्मों का क्षय हो जाने से मोक्ष में अविचल रूप से विराजमान हो गये । वह शिखर पावन हो गया और उसकी पावनता की रज कण में आज भी वह

गरिमा है कि पूरे विश्व को शान्ति, सुख और मानवीय महत्ता का संदेश अर्पित कर रही हैं यह पावन भूमि आहवान करती हैं कि आओ विश्व के चर, गोचर, अगोचर, सभ्य आवाम् देव, मानव, त्रिमेय, स्थावर, आओ और उस महान रजका स्पर्श करो, जिसने कभी देवाधिदेव, भगवान पार्श्वनाथ, के चरणों से अपने आपको धन्य माना था वही रज आज आव्हान करती है, और बुलाती है। सम्मेद शिखर जिसकी एक एक कण में व्याप्त देवाधिदेव पार्श्व नाथ की स्मृति व्याप्त है और उस स्मृति में छिपा है वह अमोघ अस्त्र जिसे लेकर हम सिद्धांतों की लड़ाई में विजयी हो सकते हैं। क्योंकि संसार में वह व्यक्ति अपार दुखी है जो परिग्रह से बंधा है जिसकी आवश्यकतायें अधिक है और जिन आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये उसके राष्ट्र को गलत या सही संधियां करनी पड़ती हैं।

आत्म निर्भर होना हमारी सबसे बढ़ी विजय है और आत्म निर्भर होने के लिये आवश्यक है कि हम सांसारिक कर्मों में कम से कम लिप्त हों। और हमारी आवश्यकतायें कम से कम हो। इसके लिये जिन सिद्धान्तों की, जिन नियमों और जिस प्रेरणा की आवश्यकता है उसके लिये हमें सम्मेद शिखर पुकार रहा है। आओ चले उस पवित्र शिखर पर जहां आज भी और आने वाली सदियों में जब तक चांद और सूरज हैं, धरती का अस्तित्व है, तब तक भक्त आते जाते रहेंगे और संसार में सुख पूर्वक रहने की प्रेरणा पाते रहेंगे।

२ भगवान पार्श्वनाथ के पिछले जन्मों के संघर्ष की महान गाथा

समय का रथ रोके नहीं रूकता, मगर इसके बावजूद भी यदि हम मोड़ दें, समय का रथ और वह चल पड़े अतीत की ओर तो...

यह भारत जो कि मेरा देश है, आपका देश है हम सबका देश है उसका गौरवमय अतीत सामने आता जायेगा। और आ रहा है। हमारे संघर्ष की कहानी, गुलामी की कहानी, घोर गहन अन्धकार की काली रात, संघर्ष और इस संघर्ष से पूर्व का वैभव।

इतिहास का रथ पीछे की ओर सरकता है।

लगता है हमें पीछे जाना होगा पीछे-महात्मा गांधी का पुत्र, लक्ष्मीबाई का पुत्र, कम्पनी सरकार का दलन पुत्र, विलासता में डूबे बादशाह, आन और शान खोये राजदूत, अकबर महान का प्राण, मुगल बादशाह से पहले का यवनों के आक्रमण का युग, अशोक और बिन्दुसार, हर्ष और विक्रमादित्य का स्वर्ण युग, भगवान वर्द्धमान का युग। कुन्डलपुर का जगमगाता वैभव, और पावापुर की शान्त शीतल वातावरण से भरपूर धरती के पृष्ठों को पीछे पलटने पर इतिहास और गरिमा युक्त होने लगता है। सम्मेद शिखर पर गूंजी वाणी मुखरित होने लगती हैं और भगवान वर्द्धमान के शासन से लगभग २५० वर्ष से कुछ अधिक काल...

वाराणसी में तब इक्ष्वाकु बंशी राजा का राज्य था। नाम

था विश्वसेन। यूं ये अश्वसेन अथवा अह्सेन के नाम से भी लोकप्रिय थे और इनकी पत्नी थी रानी वामा देवी। यूं तत्कालीन प्रजा उन्हें प्रदमदत्ता अथवा आदि जातियां वामादेवी के नाम से भी सम्मानित करती थी।

राजा और रानी।

प्रजा की आंखों के तारे थे। सब ओर धनधान्य से भरा, प्रजा में सुख और संतोष और सबसे अतिशय सम्मान मिलता था वामादेवी को।

एक जगह उनके विषय में लिखा है:

उस युग की महान सुन्दरी वामादेवी का रुप अत्यन्त ही अनुपम था। जैसे मानो रूप जलपरी वेला ने ही जन्म लिया हो। शील समानता की निधी तो वे थी ही सज्जनता की अवधि थी और सुबुद्धि की सीमा। महापुरुष रुपी मुक्ता को धारण करने वाली मुक्ता सीप थीं वे।

एक दिन

नहीं एक रात

रात का अंतिम प्रहर।

जब समूचा राज्य प्रासाद गहरी निद्रा में अचेत था तो अनायास महारानी ने सोलह स्वप्न देखे।

'सोलह मंगल सपने—

प्रतीक थे इस बात के कि तीर्थंकर आ रहे हैं।

तेइसवें तीर्थंकर।

मगर कौन ?

समय का मुड़ा हुआ घोड़ा और आगे बढ़ता हैं।

आगे और आगे।

और समय का रथ रुकता है, जम्बूद्वीप के दक्षिण भारत में स्थित एक मुख्य नगर में। नगर का नाम है पोदनपुर।

पोंदनपुर जैसे सुरय, सुन्दर नगर का राजा था अरविंद। महान धार्मिक, प्रजारिते भी और गुणी लोगों का आदर करने वाला।

एक जन्म उक्त तीर्थकंर को यहीं वताना पड़ा था। तव वे इस नगर के वेद ज्ञाता विश्वभूति और उसकी पत्नी वसुन्धरी के पुत्र थे।

वड़े भाई का नाम था कमठ।

स्वयं उनका नाम था मरुभूति।

वचपन से ही पता चलने लगा था, कौन क्या है? कमठ विश्व और पाप से पूरित और मरुभूति था साक्षात पुण्य। एक दम सीधा और सच्चा व्यक्तित्व। कमठ की स्त्री का नाम था वरुणा और विश्वभूति ने अपने छोटे लड़के की शादी जिस कन्या से की थी उसका नाम था।

वसुन्धरी और मरुभूति एक सुन्दर परिवार के सदस्य थे। एक हृदय दो प्राण। एक मन दो काया।

मुरुभूमि और कमठ दोनों ही उक्त राज में मन्त्री पद पर नियुक्त हुए। कमठ था बड़ा। मरुभुति छोटा। मगर कमठ था दुराचारी, नीच और पापी उसकी रग रग में दुष्टता समाई हुई थी।

उसकी पत्नी थी, मगर उसकी नजर अपनी पत्नी पर न होकर भाई की पत्नी पर थी। और क्योंकि इसके लिये वह दुराचारी था ही अतः उसे भाई को यम लोक पहुँचाने में अधिक सोच विचार नहीं करना पड़ा।

एक दिन कमठ ने मरु भूति को घिरवा लिया और उस पर डाका डाला। घात में लगा हुआ था और इसके साथ ही नजर उसकी पत्नी पर थी। वसुन्धरी को वह वरुणा का स्थान दिलाना चाहता था। इस लिये सदाचारी मरु भूति को मार

डाला। वरुणा भी नहीं वची दोनों मर गये और एक जीवन समाप्त हुआ इस जीवन से शुरू हुआ एक संवर्ष।

मरु भूति और कमठ के वीच एक संघर्ष।

पाप पुण्य के वीच झगड़ा।

और एक दुराचारी, जिसमें प्रति सोध की भावना थी। भावना थी उस मृत्यु पीड़ा की जिसे अनायास मरु भूति से सहना पड़ा था।

मरुभूति मर गया।

वरुणा भी मर गई। मगर कमठ जिन्दा रहा पोदनगर का राजा अरविन्द जो वर्षो पोदनगर में मन्डराता रहा। मगर अनायास उसे यह संसार असार लगने लगा। संसार के राज्य से उदासी होने लगी और इस प्रकार चौथापन सम्मुख पाकर राजा अरविंद ने योग दीक्षा ले ली। अब वह राजा न होकर मुनि अरविंद हो गये थे और उनका स्थान राज्य नहीं था। उनका स्थान था संघ और संघ जा रहा था सम्मेद शिखर की ओर। जहां एक आगुन्तक तीर्थंकर की गरिमा को आना था। अपने शासन काल में जब तक मरु भूति जीवित रहा राजा अरविंद उसे अपार स्नेह करते थे और अब जब साधू वन गये थे तो सोच रहे थे कि मरु भूति जाने किस गति में होगा।

देव गति, मनुष्य गति, त्रियंचका गति, और नरक गति।

मरु भूति कौन सी गति में होगा।

मरू भूति वन गया एक हाथी उस वक्त उसका नाम था वजर घोष वह मालवा देश के कुन्जक नामक अल्ली के वड़े वन में रहता था वरुणा भी उसी जंगल में हथनी के रुप में आ गई थी।

मरूभूति और वरूणा हाथी हथनी की जून में पति पत्नी की भांति रहते थे। और जंगल में क्रीड़ा करते घूमते थे।

महाराजा अरविन्द जो अब योगी अरविन्द हो गये थे जब उस जंगल से गुजर रहें थे तो अचानक समाधि का समय हो गया।

शास्त्रों का मत है कि तेजस्वी पुरूष समय के हाथों बंधा होता है इसलिये उन्हें कोई उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

वे प्रतिमा योग में हो गये।

और वजर घोष, जो मानमदिरा पीकर दौड़ा चला गया था वह अचानक रुक गया। रुका क्यों वह तो मद्दोन्मत था अभी हथनी के साथ क्रीड़ा करके आया था। उसके कपोल और मस्तक से मद बह रहा था वह रूक गया।

उसके सामने अंकित था वह थकावट चिन्ह जो किसी स्नेह की याद दिला रहा था यह तो उसे मालूम नहीं पड़ रहा था मगर फिर भी वह स्नेह वश खड़ा हो गया था जो कुछ हम करते हैं वह मिटता नहीं है।

पाप या पुण्य।

बुराई या भलाई।

घ्रंणा या स्नेह।

और मरने के वाद भी कवि कहते हैं: कर्म प्रतिशोध एवं स्नेह के भाव। उन्ही भावों में बंध कर वह खड़ा था।

मौन : और चुप चाप।

मुनि राज समझ गये वह कोई पूर्व जन्म का था इसी जन्म का साथी है तिर्यंच गति का हुआ तो क्या, है तो जीव ही। अतः उन्होंने उसे अपने मित्र जानकर प्राणी श्रावण के वृत प्रांषोधोपवास आदि ग्रहण करा दिये। मुनी राज अपनी राह लगे और वजरघोष अपनी राह।

यह जंगल वहुत सघन था।

हाथी चलते थे जंगल के स्थावर कांप कांप उठते थे।

हाथियों का एक दल एक ओर से दूसरी ओर के लिये रवाना होता तो जंगल की डाले गिरने लगती। वृक्ष उखड़ने लगते।

मगर वजरघोष अब दिक्षित हो गया था वह पाप से घबराने लगा था। वह चलते वक्त कोई वृक्ष नहीं उखेड़ता था।

वह छोटे पोधों को नहीं रोंदता था। वह छोटे जीवों पर दया करता था उन्हें अपने पैरों तले नहीं रोंदता था। लेकिन वही सूखे पत्ते खाता था जिसे और हाथी छोड़ जाते थे केवल वह पानी पीता था जिसे हाथियों का दल छोड़ देता था।

वह श्रावक के सभी नियमों का पालन करता था।

परिणाम हुआ : निरन्तर दुर्बलता।

लगातार कमजोरी।

और कमजोरी के बाद आ गया बुढ़ापा तरुणाई के दिन न जाने कहां लोप हो गये। अब न बल था न साहस। न पौरुष था न हिम्मत। मगर भूख अब भी सताती थीं। प्यास अब भी व्याकुल करती थी और उसी व्याकुलता में एक दिन प्यास से बेचैन वह चल दिया वेगवती नदी की ओर।

कल कल जलमयी वेगवती। अब उसका बड़ा भाई कमठ भी यौवन के इन्द्रिय सुखों से पीड़ित बुढ़ापे में जलासयों की पूर्ति न होने के कारण सांप की यौनी में आ गया था और कुर्कुट नामक सांप बनकर उसी वेगवंती नदी के दह में रहता था और प्रकृति अपना वैर पूरा करने के लिये उसे फिर अवसर दे रही थी।

वजरघोप प्यास से व्याकुल वेगवती नदी के तट पर आया। जैसे पानी पीता गया उसकी प्यास बढ़ती गई।

प्यास, प्यास, प्यास।

और उसके पांव, जैसे दल, दल में गढ़े जा रहे थे जब वजरघोप कीचड़ में फंसा तो दुराचारी कमठ का जीव कुर्कुट नामक सर्प की

जीभ उतावली हो उठी।

पहले वैर होने के कारण उसने वजर घोष नामक हाथी की सूंड में उसने काट खाया।

एक योनि के वाद दूसरी योनि…

कमठ ही जिम्मेवार था उसे हाथी की योनी में डालने के लिये। मगर जो मनुष्य योनी में कमठ नहीं कर सका, वह वजरघोष ने हाथी की योनी में कर डाला था। वह श्रावक के नियमों का पालन करके संसार की कई योनी को पार कर सहस्त्रार स्वर्ग में (वारहवें) देव वन गया। उसकी आयु सोलह सागर नियुक्त हुई।

मरुभूति, वजरघोष और वजरघोष संदेव मोति।

(३)

जम्बूद्वीप—का पूर्व विदेह क्षेत्र।

उसमें स्थित था एक देश प्रान्त—पुष्कलावती।

वहां था एक पर्वत। नाम था विजयार्ध। इसी पर्वत पर त्रिलोकोतम नगर था, जहां के राजा थे विद्युदगति और रानी थी विद्युन्माला। उनके सपुत्र के रुप में उत्पन्न हुआ मरूभूति अथवा वजर घोष।

नाम रखा था रश्मि वेग।

रश्मि वेग एक सुन्दर और वीर नवयुक के रूप में युवराज के पद पर आसीन हुआ। हर ओर उसकी धूम मची थी। युवतियां उसके रूप को देखकर ही चंचल हो उठती थी। ऐसा रूप, ऐसा पौरूष था रश्मि वेग में कि उसके रूप की हर जगह चर्चा होती थी राजा और रानी दोनों इस युवराज की शादी के लिये चिंतित थे। मगर अनायास ही एक जीर्ण, मृत और दुखी व्यक्ति को देखकर युवराज रश्मि वेग को वैराग्य हो गया।

भरी जवानी में युवराज रश्मि वेग ने समाधि गुप्त मुनिराज से दीक्षा लेने का निश्चय किया।

यह क्या हुआ—

एक क्षण तो क्या राजा रानी, क्या नर नारी सभी स्तब्ध रह गये। मगर दूसरे ही क्षण सब में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

युवराज मुनि के रूप में पुजने लगा।

राजा बनने वाला व्यक्ति सम्राट बन गया। और प्रजा को त्याग की राह पर अग्रसर करते हुए रश्मि बेग ने दीक्षा ली और सर्वतोभद्र जैसे श्रेष्ठ ग्यावास किये।

एक के बाद प्रतिमा पे, एक के बाद कठोरतयं।

अतंतः तय हुआ कि रश्मि वेग हिमगिरि पर जाकर तय करेंगे और योग धारण करेंगे।

हिमगिरि !

कमठ जो अपने पाप कर्मो के कारण कुकुंट सर्प बन गया था और जिसने वजर घोष नामक हाथी अर्थात अपने भाई मरुभूति को काट खाया था, वह मर कर धूम प्रभा (पांचवे) नर्क में गया और यह अपार दुख भोग कर वह अजगर की योनि में आया।

नरक से अजगर।

जैसे सांप नाथ वैसे नाग नाथ की कहावत की पूर्ती करने के लिये उसने फिर दुष्कर्म करने की ठानी।

वही प्रतिशोध !

प्रतिशोध की आग में जलता हुआ कमठ।

हिमगिरि में तपते योगी राज का कामवेग को पहचान गया और उसके अन्दर फिर वही भावना जाग उठी। शत्रुता की भावना से अभिभूत होकर वह क्रोध से बावरा हो गया और मुनिराज को निगल गया। 'जय अरहंत' का स्वर उभरते हुए रश्मि वेग ने प्राण त्याग दिये। परिणाम स्वरूप शास्त्रों का मत है कि उन्हें अर्थात उनके जीवन को अच्चुत स्वर्ग (सोलहवे)के

पुष्कर विमान में बाईस सागर की आयु वाले देव में परिणित कर दिया।

जब यह आयु बीत चली तो फिर मनुष्य योनि में जन्म लेने की बारी आई और इस बार जम्बू दीप के पूर्व विदेह का घराना चुना गया।

पूर्व विदेह में एक राज्य था पदम। इसकी राजधानी थी अभ्रपुर नगर अभ्रपुर नगर में जो राजा था उसका नाम था वजर-वीर्य।

वजरवीर्य की रानी थी विजया।

लक्ष्मी जैसा रूप, अखन्ड सौभाग्यवती रानी विजया ने पुण्य अवसर पर जिस बालक को जन्म दिया उसका नाम रखा गया था बजर नाभि।

बजरनाभि ही था मरुभूति।

यह एक मेघावी राजा था, जिस पर लक्ष्मी और विजय श्री की अपार कृपा थी। वह चक्रवृति राजा बना और अपार भरा वैभव भोगता रहा।

एक दिन जब राजा का दरबार लगा था तो महान गुणी साधू क्षमकर महराज के वचनों को सुनकर उनको संसार असार नजर आने लगा। और यकायक उन्हें राजपाठ से विरक्त हो गई राज्य को अपने पुत्रों को सौंप कर वजरनाभि ने संयम को अपना लिया।

(४)

और कमठ। जो पापात्मा था। जिसका जीव कभी सांप बना और कभी अजगर और इसके बाद वह पांचवें नरक में पैदा हुआ।

छटा नरक ! सातवां नरक अन्तिम नरक होता है। केवल नरक जहां की असाध्य गर्मी, असाध्य दुख पीड़ा सहकर वह बाईस

सागर तक अत्यन्त दुख भोगता रहा। अनंत समय तक दुख भोगता हुआ वह कुछ पुण्य कर्म के कारण मनुष्य योनि में आया और भील जाति में एक दुष्ट बालक बना। इस बालक का नाम था कुरंग।

कुरंग नामक भील उस वन के समस्त जीवों को अन्यतम-त्रास देता था। उसी जंगल में तपस्वी चक्रवर्ती वजरनाभि तप कर रहे थे।

कुरग ने उन्हें देखा।

कमठ ने देखा अपना छोटा भाई मरूभूति फिर उसका क्रोध भड़क उठा। उसके गुस्से की लहर दौड़ उठी।

उसने उन्हें त्रास देना शुरू किया।

उपसर्गों के कारण उन्हें शरीर त्यागना पड़ा।

फिर हुआ नया जन्म

क्योंकि विरक्त मुनिराज का जीव धर्म ध्यान में प्रवेश कर चुका था और अच्छी तरह आराधनाओं की आराधना कर चुका था इस कारण शास्त्रमत के अनुसार सुभद नामक मध्यम ग्रैवेयक के मध्यम विमान में सम्यक दर्शन का धारक श्रेष्ट अहमिन्द्र हुआ।

अहमिन्द्र कौन होते हैं।

शास्त्रों का कथन है कि सोहलवें स्वर्ग के आगे के देव अह-मिन्द्र कहलाते हैं। और उनमें राजा प्रजा का व्यवहार नही होता सभी एक समान वैभव के धारक होते हैं। इस स्वर्ग का भोग भोगने के वाद फिर मनुष्य लोक में जाने का अवसर मिला। इस वार इस जीव ने सत्ताइस सागर की आयु को भोगाण्या और उसके वाद उसने अदोध के कश्यप गोत्र इक्ष्वाकुनरेश वजरवाह एवं रानी प्रमकरी के यहां जन्म लिया।

इस वार नाम रखा गया आनन्द ।

आनन्द के रूप में यह जीव एक सुविज्ञा प्रशासक और योग्य शासक सिद्ध हुआ । वह नीतिवान राजा था जो प्रजा के हर कार्य में रुचि लेता था ।

धीरे धीरे पूरे मन्डलेश्वर पर उसका अधिकार हो ही गया ।

उसने खोज कर अच्छे विद्वान अपनी मंत्री परिषद में रखें । और उनका नेता जिस व्यक्ति को बनाया था वह था स्वामी हित ।

स्वामी हित वास्तव में स्वामी हित चाहने वाला था ।

वह एक गुणी और राजनीति का पंडित था, जिसे सब अच्छे बुरे की पहचान थी । आनन्द नृप उसका अपार सम्मान करता था ।

एक बार जब माहा मास आया । बहारों ने अपना रूप निखारा । बागों में फूल खिले तो राज्य में उत्सवों की धूम मच गई ।

उत्सव और त्योहार ।

उन्हीं में एक उत्सव था पूजा उत्सव । इस बार इस पूजा उत्सव में विपुलमति नामक मुनिराज पधारे ।

मुनिराज ने उन्हें पूजा की सम्पूर्ण व्यवस्था करके उन्हें धर्मो-उपदेश दिया । नृप आनन्द ने उक्त मुनिराज की भली–भाति बन्दना करके पूछा—'महाराज, एक शंका है । अगर आप आज्ञा दे तो प्रस्तुत करू ।'

'अवश्य राजन् ।'

'महामने ! आप जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति की आज्ञा देते हैं ।'

'हां !'

'मगर वह तो अचेतन है। उसमें भला बुरा कहने की शक्ति कहां से आई। और शक्ति नहीं है तो वह पूजा पुण्य रूप में कैसे फल देगी।'

'राजन्! सुनो! यह ठीक है कि देवालय और प्रतिमाएं चेतन नहीं है। मगर वें भव्य जीवों के पुण्य बंध के कारण ही है। और पुण्य बंध कैसे होता है। पुण्य बंध वास्तव में परिणामों से होता हैं और परिणामों की उत्पत्ति में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा और मन्दिर कारण- बनते हैं।

'जी वह कैसे?'

'जिनेन्द्र भगवान राजादि द्वेषों से रहित है। मानते हो।'

'जी!'

'शस्त्र और आभूषण से विमुख हैं, स्वीकृत?'

'जी!'

उनके मुख की शोभा चांद के समान निर्मल एवं उज्जवल है। वे लोक अलोक को जानने वाले है। इसलिये उनके मन्दिर में दर्शन करने वाले लोगों की शुभ परिणामों जैसी प्रकर्षता होना है वैसी अन्य कारणों से नहीं हो सकती।'

'जी क्यों?'

'क्योंकि समस्त कार्यों की उत्पत्ति अन्तरंग और वहिरंग दोनों कारणों से होती है। इसलिये जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा पुण्य-बंध के कारण भूत शुभपरिणामों का मूल हैं।'

'जी!'

'अब मैं आपको तीनों लोकों के चैत्यालयों के आकार आदि की बात बतलाता हूं। और सबसे पहले सूर्य के विमान में स्थित जिन मंदिर की विभूति बतलाता हूं।'

जैसे जैसे मुनिराज उस विभूति के विषय में बतलाते गये आनन्द की श्रद्धा बढ़ती गई। इतनी बढ़ी कि उसने सुबह श

सूर्य के विमान में स्थित जिन प्रतिमाओं की न केवल स्तुति करनी प्रारम्भ की अपितु यानि सुर्वण का एक सूर्य विमान भी बन गया साथ ही उसके भीतर फैलती हुई शान्ति का धारक जिन मंदिर भी बनवाया। बनवाने के बाद शास्त्रोक्त पूजा की। ये पूजा निम्न प्रकार की थी।

× आष्टाह्निकी × चतु र्मुख × स्थावर्त × सवर्तोभद्र और कल्पवृक्ष।

इनका वर्णन इस प्रकार है—

(१) आष्टाह्निकी पुजा : कार्तिक फागुन और आषाढ़ के अंतिम दिनों में आठ दिनों का आष्टाह्निक पर्व होता है जिसमें विशेषत: नन्दीश्वरद्वीप में पूजा होती हैं जहां ५२ जिनालय हैं।

× चतु र्मुख : ग्रहस्थ के द्वारा की जाने वाली पूजा

× स्थावर्त : ग्रहस्थ के द्वारा की जाने वाली अन्य पूजा

× सवर्तोभद्र : एक उपवास का व्रत और एक ग्रहस्थों द्वारा आयोजित एक विशिष्ट पूजा

× कल्पवृक्ष : ग्रहस्थ चक्रवृती के द्वारा की जाने वाली एक विशिष्ट पूजा।

(५)

सूर्य पूजा का संचालक नृप आनन्द ही था।

क्योंकि जब राजा ने पूजा करनी शुरू की तो प्रजा के भक्ति भाव का क्या कहना। जब राजा और प्रजा एक दूसरे का हित चाहें तो इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है।

समय बीत रहा था।

नृप आनन्द का नाम चहूँ ओर फैल रहा था।

युद्धवीर, दयावीर, दानवीर, आगे नीति भावनाओं से भरपूर राजा नृप एक दिन सोच में पड़ गये।

उनका यौवन क्षय होने लगा था।

उनके सिर पर सफेद बाल आ गये थे।

जब संसार असार है, यौवन क्षयवान है, शरीर नासवा
तो ऐसे साम्राज्य से क्या मोह ?

राजा आनन्द को वैराग्य हो गया।

उन्होंने अपने बड़े लड़के को अपना राज्य पाठ देकर मुनी
समुद्र गुप्त के पास जाकर दीक्षा ले ली। राजपाठ छोड़ दि
राज की भावनायें त्याग दी। शुभ लेश्या के द्वारा उसने च
आराधनाओं की आराधना की विशुद्धता प्राप्त करके ग्यारह अ
का अध्ययन किया। तीर्थंकर नाम कर्म के बंध में बंधकर का
भूत सोलह कारण भावनाओं का चिन्तन किया। साथ ही ती
कर नायक पुन्य प्रकृति का बंध किया और बहुत समय तक तप
में लीन रहे और अन्त समय उनकी स्थिति इस प्रकार से हो
थी।

× धीर वीर।

× अन्तरात्मा शांत।

× मन आकुलता रहित।

× धर्म ध्यान के आधीन।

× प्रायोग गमन सन्यास से विभूषित।

इसके बाद वे क्षीर वन में प्रतिमायोग से विराजमान हु
जब वे भक्ति में लीन थे तो एक दिन सिंह ने आकर उनका
पकड़ लिया।

यह सिंह कौन था। यह कोई और न होकर मरूभूमि
बड़ा भाई कमठ था जो हर वार प्रतिशोध की अग्नि में ज
भुनता नरक भोगता था कुर्कुट सांप बन गया। अजगर वह
और अब एक हिंसक पशु (सिंह) के रूप में वह क्षीर वन में वि
रहा था। अपने सामने तपस्या में लीन आनन्द कुमार मुनि
देखकर उसके क्रोध का आरपार न रहा। वह गुस्से से

बूला हो उठा। उसने तत्क्षण आनन्द मुनि का गला पकड़ लिया।

मुनि आनन्द ने फिर कमठ का उपसर्ग सहन किया और प्राण रहित होकर अच्छुत स्वर्ग में इन्द्र हुए। वहां उनकी स्थिति इस प्रकार थी—

आयु : वीस सागर।
ऊंचाई : साढ़े तीन हाथ।
लेश्या : शुन्त।
सांस लेने की अवधि : इस माह मानसाहार देवता की भूख होती है जिसके विषय में यह विधान है कि जितने सागर की आयु होती है उतने हजार दिन बाद उन्हे आहार की इच्छा होती है इच्छा होती ही कंठ में अमृत पड़ जाता है और उनकी क्षुधा दूर हो जाती है इसके अलावा उत्तर पुराण के अनुसार वहां निम्न सुविधायें प्राप्त थी।

उसके मानसिक स्त्री प्रतिचार था पांचवी पृथ्वी तक अवधि-ज्ञान का विषय था उतनी दूरी तक ही उसकी भांति, विक्रम और तेज था, सब सिद्धियों के धारक सामानिक आदि देव उसकी पूजा करते थे और वह इच्छानुसार काम प्रदान करने वाली अनेक देवियों के द्वारा उपादित सुख की खान था। इस प्रकार समस्त विषय भोग प्राप्त कर वह निरन्तर उसका अनुभव करता रहता था और उन्हीं में संतुष्ट रह कर लीला पूर्वक वहुत लम्बे समय को एक कला की तरह व्यतीत करता था जिस समय आयु के अन्तिम छः माह रह गये और वह इस पृथ्वी पर आने के लिये सन्मुख हुआ…

इस प्रकार अब तक निम्न जीवन देखे गये :—

(१) मरुभूति : कमठ द्वारा हत्या।
(२) वजर घोष : कमठ के जीव कुकुंट सांप द्वारा डसना।

(३) सहस्त्र स्वर्ग में सोलह सागर की आयु वाला देव।

(४) रश्मि वेग : कमठ के जीव का अजगर योनि में आ निगल जाना।

(५) अच्युत स्वर्ग में बाईस सागर वाला देव।

(६) वजरनाभि : कमठ के जीव का कुरंग भील के रूप हत्या करना।

(७) स्वर्ग में अहभिद्र।

(८) नृप आनन्द : कमठ के जीव का सिंह के रूप में क पकड़ लेना।

(९) अच्युत स्वर्ग प्राणत विमान में इन्द्र।

(१०) तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ।

३ माता वामा देवी के सोलह स्वप्न और भगवान पार्श्वनाथ का जन्म—

राजा अश्वसैन। रानी ब्राह्मी, वामादेवी अथवा ब्रह्मदत्ता वम्भा देई! जो भी हो, भगवान पार्श्वनाथ की माता श्री एव अत्यन्त सुन्दरी थी जो काशी नरेश अश्वसेन की अर्धांगनी थी वह शुभ घड़ी वैशाख कृष्ण द्वितीया था जब रात्रि के अंतिम प्रहर मे निम्न सोलह सपने देखे थे—

पहला : हाथी
दूसरा : बैल
तीसरा : सिंह
चौथा : लक्ष्मी अभिषेक

पांचवा : दो मालायें

छटा : चन्द्रमा

सातवां : सूर्य

आठवां : मछलियों का जोड़ा

नौ : कलश

दस : सरोवर

ग्यारह : सिंहासन खाली

बारह : देवों का विमान

तेरह : नागेन्द्र भवन

चौदह : रत्नराशि

पन्द्रह : निर्धूम अग्नि

सोलह : मुख कमल में हाथी का प्रवेश

रानी इन सपनों को देख ही रही थी कि अचानक उनकी आंख खुल गई। प्रातःकाल के समय बजने वाले नगाड़े बज रहे थे। रानी उठी। मंगलाभिषेक से सम्पन्न होकर तथा वस्त्र आदि पहन कर राजा के समीप पहुँची।

राजा अश्वसेन ने उन्हें पर्याप्त आदर दिया। उन्हे आदर पूर्वक आधे सिंहासन पर बैठाया। बैठने के पश्चात रानी ने अपने उपरोक्त सभी सपने कह सुनाये। राजा अश्वसेन ने अपने अवधिज्ञान से अभिभूत होकर कहा—'रानी, तुम मुझे अपने सभी सपने कह सुनाओ, मैं उनका अर्थ बतलाता जाऊंगा।' रानी ने अपने सपने कहकर उनके फल जो प्राप्त किये वह इस प्रकार थे—

पहला सपना : हाथी

फल : पुत्र होगा।

दूसरा सपना : बैल दर्शन,

फल : वह तीनों लोकों का स्वामी होगा।

तीसरा सपना : सिंह दर्शन,

फल : अनन्त वीर्य का धारक होगा।

चौथा सपना : लक्ष्मी अभिषेक का दर्शन,

फल : उसे मेरू पर्वत पर अभिषेक करने का गौरव मिलेगा।

पांचवा सपना : दो मालाओं का दर्शन,

फल : इसका फल होता है ग्रहस्थ धर्म और मुनि धर्मों के तीर्थों की नुवृद्धि करने वाला होगा।

छटा सपना : चन्द्र दर्शन हुआ,

फल : इस फल के अनुसार वह तीन लोक का चन्द्रमा होगा, और जिस प्रकार चन्द्रमा तीनों लोकों में पूजनीय और वन्दनीय है ऐसे ही वह तीनों लोकों में वन्दनीय होगा।

सातवां सपना : सूर्य दर्शन,

फल : इस सपने के अनुसार होने वाले पुत्र में सूर्य जैसा तेज होता। अर्थात वितांत तेजस्वी होगा।

आठवां सपना : मछलियों का जोड़ा,

फल : जीवन पूर्ण सुख से बीतेगा।

नवां सपना : कलश दर्शन,

फल : अपार निधियों का स्वामी होगा।

दसवां सपना : सरोवर दर्शन,

फल : समस्त लक्षणों से युक्त और प्रभूता सम्पन्न होगी।

ग्यारहवां सपना : सिंहासन दिखलाई पड़ना,

फल : समस्त प्राणी—देव और मनुष्य सभी के द्वारा वह पूजनीय होगा।

बारहवां सपना : विमान दर्शन,

फल : जब विमान का दर्शन हो तो समझना चाहिये कि आने वाला जीव निश्चित रूप से धर्म नेता होगा।

(कहा जाता कि जब जब धरती पर पाप बढ़ते हैं तो दिव्य विभूति संसार का मार्ग दर्शन करने के लिये आता है।)

तेहरवा सपना : नागेन्द्र भवन का दर्शन,

फल : नागेन्द्र भवन का दर्शन यह फल देता है कि वह तीन ज्ञानों का धारण करने वाला होगा।

चौदहवां सपना : रत्नों की राशि,

फल : इस प्रकार के सपने का फल यह होता हैं कि आने वाला व्यक्ति समस्त गुणों से अलंकृत होगा।

पन्द्रहवां सपना : निधूर्म अग्नि,

फल : बगैर धुयें की आग समस्त पापों को जलाने वाली होती है यह इस बात का सूचक है कि आगमन में जिस महान आत्मा का उदय हो रहा है कि उसको देखते ही पापों का नाश हो जायेगा !

सोलहवां सपना : मुख कमल में हाथी का प्रवेश।

फल : रानी ? तुमने अन्तिम सपने में देखा है कि तुम्हारे मुख कमल में हाथी का प्रवेश हुआ सो सपना बड़ा फलदायक हैं जो पुत्र तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होगा वह महान तेजस्वी, दयावान और देवताओं से भी बन्दनीय होगा। वह देवों का भी देव अर्थात देवाधिदेव होगा।

रानी ने इन सपनों का फल सुना।

अपार प्रसन्नता से उसका रुप दुगना चौगना हो गया। वह मृग नयनीं अपने इस महान व्रत की सफलता से फूली नहीं समा रही थी ऐसे समय तब तीर्थंकर के रूप में भगवान पार्श्वनाथ का अवतरण हो रहा था यह कोई अतिशयोक्ति नहीं कि सब जगह प्रसन्नता की लहर न दौड़ जाये और सब ओर हर्ष मंगल का वातावरण न हो।

नौ माह व्यतीत हुये।

और व्यतीत हुआ प्रतीक्षा का समय । पौष कृष्ण एकादशी, अनिल योग में रानी वामा देवी ने एक पुत्र को जन्म दिया । इस अवसर का वर्णन करते हुए कवि दौलत राय ने कहा हैं—

वामा घर वजत वधाई चलि देखि रे माई ।
सुगन राज जग आस भरन तिन, जने पार्श्व जिनराई ।
श्री ह्री धृति कीरति वुद्धि लक्ष्मी हर्ष अंग न माई ॥१॥
वरन वरन मन भूर सची सव, पूरत चोक सुहाई ।
हा हा हु हू नारद तुम्बर गावत श्रुति सुखदाई ॥२॥
तांडव नृत्य तटात हरिनर तिन नख नख सुरो नचाई ।
किन्नर कट घर वीन वज वत, द्रगमन हर छवि भाई ॥३॥
दोलतासु प्रभु की महिमा सुर गुरु पे कहिये न जाई ।
जाके जन्म समय तरकत में तारकि साता पाई ॥४॥

अर्थात—आओ सखी चलो चलें । देखे । आज वामा देवी के घर वधाई वज रही है । उन्होंने अनेकानेक श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न और जग की आशा को पूर्ण करने वाले जिन नाथ भगवान पार्श्वनाथ को जन्म दिया है । इससे छः देवियां श्री द्धि, धृति, कीर्ति वुद्धि और लक्ष्मी अति प्रसन्न है । हर्ष से उनके अंग फूले नहीं समाते । सब इन्दाणियां कई प्रकार के रंगों से चौक पूर रही है । चौक पूरने का रंग मणियों को पीस कर बनाया गया हैं नारद के तुम्वर में से हा हा हु हू की ध्वनि निकल रही है और शारदा सुखद गीत गुनगुना रही है । इन्द्र नर के रुप में तांडव नृत्य कर रहे है और उनके प्रत्येक नाखून पर देवियां थिरक रही हैं । नेत्र और मन को हरने वाली छवि से किन्नर हाथों में वीणा पकड़ कर वजा रहे हैं । कवि दौलत राम कहते हैं कि उस प्रभु की महिमा का वर्णन सुर गुरु भी नहीं कर पाते । इस महान व्यक्तित्व के जन्म के समय नरकों में नारकियों को भी कुछ समय के लिये सुख प्राप्त हुआ था ।)

भगवान पार्श्व नाथ का जब जन्म हुआ था उस समय का वर्णन उत्तर पुराण में इस प्रकार किया गया है:—

नौ माह पूर्ण होने पर पोष कृष्ण एकादशी के दिन अनिल-योग में वह पुत्र उत्पन्न हुआ। उसी समय इन्द्र अपने आसन के कपायमान हो जाने के कारण सौ धर्म आदि सभी इन्द्रों ने तीर्थंकर भगवान के जन्म का समाचार जान लिया तथा सभी ने आकर सुमेरु पर्वत के मस्तक पर उनके जन्म कल्याणक की पूजा की, और उनका पार्श्वनाथ नाम रखा और फिर उन्हें उनके माता पिता को देकर समर्पित कर दिया। श्री नेमिनाथ भगवान के मोक्ष हो जाने के बाद तिरासी हजार सात सौ पचास वर्ष बीत जाने पर आठों कर्मों को जीतने वाले भगवान पार्श्वनाथ उत्पन्न हुये थे। उनकी आयु एक सौ दस वर्ष की थी, जो उसी पूर्वोक्त अन्तराल में शामिल थी। उनके शरीर की छवि धान के छोटे पौधे के समान हरे रंग की थी। वे समस्त लक्षणों से सुशोभित थे। उनका नौ हाथ ऊंचा शरीर था ! वे लक्ष्मीवान थे और उग्रवन्श में उत्पन्न हुये थे।

(सन्दर्भ: उत्तर पुराण : जिन प्रतितम पर्व—८९, ९०, ९१, ९२ श्लोक)

उस वक्त भगवान पार्श्वनाथ की छवि कैसी थी, उसका वर्णन एक और कवि ने इस प्रकार किया था—

पारसप्रद नख प्रकाश अरून वरन ऐसो ॥
मानो तप कुन्जर के, सीस को सिन्दूर पूर,
श्राग दोष कानन को दावानल जैसी ॥ पारस ॥
बोध भई प्रात. काल, ताको रवि उदय लाल,
मोक्ष वधू कत्र प्रलेप कुंकुत्राभ तैसो ॥ पारस० ॥
कुशलवृक्ष दल उतास, इहि विधि वहुगुण तिवास,
भूधर की भरहू आस, दीन दास के सो. ॥

(अर्थात पार्श्व प्रभू के पैरों के नखों से फूटने वाला प्रकाश ऐसे

लाल वर्ण का है जैसे मानो तपरूपी हाथी के सिर पर लगा सिन्दूर का ढ़ेर हो अथवा रागद्वेष रूपी जंगल में आग लगगई हो।

प्रभू का लाल रंग का नख प्रकाश ऐसा लगता है जैसे कि हर किसी को जगाने वाले प्रातः काल का सूर्योदय हो या मोक्ष रूपी वधू के कूचों पर कुकर्म का प्रलेप हो। अथवा पाटल वृक्ष के विकसित यन्त्रो सा प्रतीत होता है।

इस प्रकार का वर्णन पार्श्वनाथ के जन्म की सार्थकता का प्रतीक है।

४ पार्श्वनाथ भगवान की महिमा परम्परा और पिछले तीर्थंकरों की गरिमा भरी विरासत

(१)

संसार के नहीं पूरे लोक के जीव, जो चाहें मनुष्य गति के हों या तिर्यंच के, वे सभी उन तीर्थंकरों के प्रति आभारी हैं, जिनके अविभाव से संसार के दुख कम होते हैं। कर्म - बन्ध कटते हैं और जीव मुमुक्ष की ओर अग्रसर होता है। इस पथ की खोज के लिये ये सभी धारायें लाभकारी होती हैं और उनका मनोहारी जीवन चारित्र कर्मों को समाप्त करने वाला होता है। तभी तो भगवान अजित नाथ के निर्दोष एवं पूर्वापर विरोध आदि दोषों से रहित वजन जाल की तरह भव्यादि जीवों के मन में स्थित रागद्वेष के मैल को धो डालने की क्षमता करवाते हैं।

कहते हैं कि पूर्व विदेह क्षेत्र में कलकल करती सीता नदी के

तट पर दक्षिण में वत्स अंचल में सूसीमा नाम का नगर था ।

इस नगर का राजा विमल वाहन । प्रभावशाली, न्याय, प्रसिद्ध इस राजा के राज्य में यह सिद्धान्त प्रतिपादित होता था कि धर्म से पुण्य होता है, पुण्य से अर्थ निकलता हैं और अर्थ से अभिचापित भोगों की प्राप्ति होती है । पुण्य के बिना अर्थ और काम नहीं मिलते । इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करके यह राजा 'जिन धर्म' का अनुयायी हो गया था । उसे सम्यक दर्शन सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र जैसे महान रत्नाध्य प्राप्त हो गया और वह संसार से, विरक्त होकर एकान्त वास करने लगा था । उन्हें मालूम हो गया था कि इस जीव का शरीर में जो निवास हो रहा हैं वह आयु कर्म से ही होता है । मैं यद्यपि शरीर में स्थित हूँ तो भी काल की परिमित घड़ियों में धारण किया हुआ मेरा आयु रूपी बल शीघ्र ही गलता जाता है । उतरोत्तर कम होता जाता है इसलिये मेरा आयु रूपी बल जब तक समाप्त नहीं होता तब तक मैं स्वर्ग और मोक्ष के मार्ग भूत जैन धर्म में उत्साह के साथ प्रवृति करूंगा ।' इस प्रकार वह राजा जिन दीक्षा से दीक्षित होकर तीव्र तपस्या में लीन हो गया और इस तप के कारण उसे ग्यारह अंगों के ध्यान से विज्ञ होकर पंच परमेष्ठी में अपना ध्यान स्थिर करके समाधिमरण करके विजय नाम के विमान में देवलोक पहुंचा । और वहां के सुख भोग कर भरत क्षेत्र में साकेत नगर के इच्छ्वक वंशीय काश्यप क्षेत्र के अधिपति राजा अजित शत्रु की रानी विजया सेना के यहां उत्पन्न हुये ।

वह शुभ दिन जेठ महीने की अमावश्या का था । रोहणी नक्षत्र का कलामात्र से अव शिष्ट चन्द्रमा के साथ संयोग जब महारानी विजयासेना ने सब तीर्थंकरों के उत्पन्न होने वाले सोलह सपने देखे । और माघ मास की शुक्लपक्ष की दशमी को अजे का योग में जन्म लेने वाले इस तीर्थंकर का देवताओं ने

अजितनाथ नाम रखा।

अजितनाथ स्वामी का रंग सोने के समान था।

बड़े होकर वे राजा बने और एक दिन महल की छत पर अजितनाथ स्वामी विद्यमान थे। तभी उन्होंने एक भयंकर उल्कापात देखा। उल्कापात देखकर उनके मन में यह बात उत्पन्न हुई कि जिस प्रकार उल्का का पतन अवश्यभावी है उसी प्रकार लक्ष्मी भी अस्थिर है। बस इसी कारण उनको राजपाट और वैभव से विरक्ति हो गई और उन्होंने जिस प्रकार थाली में झूठन छोड़ दी जाती है उसी प्रकार अपने पुत्र अजितसेन को राजपाट देकर दीक्षा के लिये प्रस्तुत हो गये।

देवताओं ने उनका दीक्षा अभिषेक किया।

देवों ने वन में ले जाने के लिये जिस पालकी को बुलाया था उसका नाम था सुलमा।

सुलमा पालकी पर उन्हें बिठाल कर पहले पुरुष ने और फिर देवताओं ने उसे दबाया। मनुष्यों और देवताओं के बीच विद्याधरों का भी सहयोग था। यह माघ मास की शुभ शुक्ल पक्ष की नवमी का रोहणी नक्षत्र का उदयकाल था जब उनकी पालकी सहा वर्ण वन में वृक्ष के निकट पहुंची।

इस पेड़ के समीप उनके साथ एक हजार आज्ञाकारी और नृप भी थे, जिन्होंने उन्हीं के साथ दीक्षा ले ली थी।

दीक्षा लेते ही वे साकेत नगरी की ओर प्रस्थान कर गये। अब वे एक राजा न होकर भिक्षु थे अतः उस नगर के राजा ने उन्हें दान देकर अपना गौरव बढ़ाया। इस प्रकार उसके शुभ सातावेदनी कर्म का उदय हुआ।

भगवान अजितनाथ बारह साल तक तपस्या करते रहे।

शुद्ध ज्ञान उनकी सहायता कर रहा था। बारह साल की लगातार तपस्या की अभिभूत पोष शुक्ल एकादशी के दिन उन्हें

सच्चा केवल ज्ञान हो गया। वे सर्वज्ञ हो गये। उनके अब तक ९ हजार शिष्य हो चुके थे। यह संख्या उनके अनुयायी संस्था से अलग थी। ये तो गणधर थे जिनमें सिंह सेन प्रमुख थे। इनका नाम अजितनाथ इसलिये रखा था क्योंकि उन्हें न तो पापों से जीता जा सकता है। और न समस्त वादी ही उन्हें जीत पाये थे इस कारण भगवान 'अजीत' को सभी लोग अजेय मानते थे, इस प्रकार वे समस्त क्षेत्र में धर्म का प्रचार करके सम्मेद शिखर पर चले गये वहां उन्होंने एक मास तक निवास किया और इस निवास में निम्न कार्य सम्पन्न किये।

☐ कर्म प्रकृतियों की असंख्यात निर्वंश।

☐ सूक्ष्म क्रिया प्रति पाती ध्यान के द्वारा योगों के वैभव को नष्ट किया।

☐ औद्यारिक तैजस और कार्यण इन तीनों शरीरों के सम्बन्ध को प्रथक किया।

☐ अतिशयति शुद्धता प्राप्त की।

☐ चतुर शुक्ल ध्यान का आश्रय लिया।

☐ अनन्त ज्ञान आदि आठ गुणो को प्राप्त किया।

☐ और फिर आई चैत्र शुक्ला पन्चमी। तब चन्द्रमा रोहणी नक्षत्र था। प्रातः समय भगवान अजित नाथ ने प्रतिमा योग प्राप्त करके मुक्ति पद प्राप्त किया।

(२)

भगवान अजित नाथ के बाद हुये भगवान सम्भव नाथ जी पाखण्डो के विस्तार को नष्ट करने वाले भगवान संभवनाथ का प्रथम जन्म विमल वाहन के रूप में हुआ था। विमल वाहन विदेह क्षेत्र में कलकल बहने वाली नदी झील के उत्तर तट पर कच्छ प्रदेश के नगर क्षेमपुर के यशस्वी राजा के घर में जिनके अन्तर में संसार से विरक्त होने की गहरी भावना थी। यमराज के दांतों के बीच

में रहकर जीवित रहना, आयु असंख्यात समय की है और ती
मृत्यु अवश्यभावी है, ठीक उस सूनी नदी के तट पर के जी
स्थान पर धूप से बचने के लिये सोये ।

इसी कारण विमल वाहन ने समय आने पर अपने सु
विमल कीर्ति को अपना राज्य सौंप कर जिनेन्द्र भगवान की दी
प्राप्त कर ली । दीक्षा के काल में उन्हें ग्यारह अंग की जानका
के वाद सोलह कारण भावनाओं के द्वारा तीनों लोकों में क्षो
पैदा करने वाला तीर्थंकर नामक कर्म वन्ध हो गया ।

सन्यास की अवधि के वाद शरीर छूट गया और जीव प्र
ग्रैवेयक के सुदर्शन विमान में वड़ी वडी ऋद्धियों का स्वामी ह
कर अहमिन्द्र हुआ और इसके वाद वहां के सुख भोग कर भर
क्षेत्र में श्रावस्ती नगरी के राजा दृढ़ राज्य की रानी सुषमा
गर्भ से जन्म लिया ।

राजा दृढ़ राज्य काश्यप गोत्र का इक्ष्वाकु वंशी राजा था
जिसके शरीर का रंग बहुत ही शोभायमान था । जिस दिन
गर्भ में आये उस दिन फाल्गुन शुक्ल की अष्टमी थी और मृग
शिप नक्षत्र था । इसके ठीक नो माह वाद कार्तिक शुक्ला पूर्ण
मासी को मार्ग शिरा के सौम्य योग भगवान सम्भवनाथ का ज
हुआ ।

काफी दिन राज भोगने के वाद एक दिन भगवान सम्भना
ने मेघों का विप्रय देखने के वाद संसार से विरक्ति प्राप्त कर ली

उन्होंने घोषित किया प्राणों के वीच रहने वाला आयु क
ही यमराज है । जो इसी शरीर में व्याप्त रहता है और सम
आने पर इस शरीर का नाश कर देता है ।

राग रूपी रस में लीन यह जीव विष की भांति कटु विषय

को भी सरस मान कर उसमें लिपटा रहता है और अनादि काल से बुद्धि के भ्रम का शिकार होता आया है।

संसार सुख तो केवल इन्द्रिय, आयु और इस पदार्थ की समीपता में है, जबकि जीव का सानिन्ध आत्मा से है।

संसार का समस्त वैभव बिजली की एक चमक मात्र है। जो न भिक है न स्थायी।

यह जानकर भगवान संभवनाथ ने अपना राज्य अपने पुत्र को सौंप कर सिद्धार्थ नाम की पालकी में सवार होकर जब दीक्षा के लिये बाहर निकले तो उनके साथ एक हजार नृप भी थे जो दीक्षा के लिये प्रस्तुत हो गये।

उस वक्त भगवान संभवनाथ की प्रभा सोने के रंग के समान थी। इसके दूसरे दिन वे आहार के लिये श्रावस्ती नगर की ओर चल पड़े। उन्होंने प्रथम आहार राजा सुरेन्द्रदत्त के महल में प्राप्त किया।

इसके बाद चौदह दिन तक वे तपस्या में लीन रहे।

फिर ये दीक्षावन में पहुंच कर शाली वृक्ष के नीचे कार्तिक कृष्ण चतुर्थी के दिन जन्म कालीन मृग सिर नक्षत्र में शाम के समय बेला का नियम लेकर ध्यानास्थ हो गये तथा चार कर्मों को नष्ट करके केवल ज्ञान को प्राप्त हो गये। उस समय चार प्रकार के देवों ने केवल ज्ञान महोत्सव किया। उनके एक सौ पांच गणधर थे उत्तर पुराण में उनके विषय में लिखा गया है—

'जिस प्रकार छोटे-छोटे अन्य अनेक पर्वतों से घिरा सुमेरु पर्वत शोभित होता है उसी प्रकार चारूषेण आदि एक सौ पांच गणधरों से घिरे हुये भगवान संभवनाथ सुशोभित हो रहे थे वे दो हजार एक सौ पचास पूर्व धारियों से परिवृत थे, एक लाख

छनतीस हजार तीन सौ भिक्षकों से युक्त थे। नौ हजार छः सौ अविधि जातियों के सहित थे, और पन्द्रह हजार केवल ज्ञानियों से युक्त थे। उन्नीस हजार आठ सौ विक्रया सिद्धि के धारक उनके साथ थे, वारह हजार एक सौ पचास मनपर्यय ज्ञानी उनकी सभा में थे। तथा वारह हजार वादियों से सुशोभित थे। इस प्रकार वे सब मिलाकर दो लाख मुनियों से अत्यन्त शोभा पा रहें थे। धर्मीयों को आदि लेकर तीन लाख बीस हजार आर्यकायें थी, तीन लाख श्रावक थे। पांच लाख श्राविकायें थी। असख्यात देव-देवियों और असंख्यात तिर्यच उनकी स्तुति करते थे। इस प्रकार भगवान धर्म को धारण करने वाली वारह सभाओं के स्वामी थे। वे चौंतिस अतिशय आठ प्रातिहार्य के प्रभु थे। दिव्य ध्वनि रूपी चान्दनी द्वारा सवको आह्लादित करते थे। तथा सूर्य को नम्री भूत करने वाले थे। भगवान संभवनाथ ने चन्द्रमा को तिरस्कृत कर दिया था। क्योंकि चन्द्रमा सुदी और वदी दोनों पक्षों में संचार करता है मगर भगवान शुद्ध अर्थात निर्दोष प्रथा में ही संचार करते थे। चन्द्रमा दिन में लक्ष्मीहीन हो जाता है, परन्तु भगवान मोहितमयी के सहित थे। चन्द्रमा कलंक सहित हैं, मगर भगवान निष्कलंक और निष्पाप थे—'

जब आयु का एक माह रह गया तो भगवान संभवनाथ ने सम्मेद शिखर पहुंच कर विहार वंद कर दिया और एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमायोग धारण किया।

मास चैत्र, पक्ष शुक्ल और तिथी षष्ठी, समय सुर्यास्त।

भगवान संभवनाथ अपने एक हजार साधुओं के साथ प्रतिमा-योग में वैठे थे। समस्त संयम के गुणों को अपनाकर आठ कर्म शत्रुओं का नाश करके, आपमोक्ष भूमि में अत्यन्त सुख के साथ सुशोभित हो गये।

(३)

अगले तीर्थंकर।

भगवान अभिनन्दन स्वामी ।

मंगलावती नामक प्रान्त में महाबल नाम का राजा अपने राज्य में बड़ा लोकप्रिय था, और उसका न्याय सर्वविदित था। ऐसा मेधावी व्यक्ति संसार की अनिष्ठता पर मोह भंग होकर विरक्त हो गया।

उसने अपना राज्य अपने सुपुत्र धनपाल को देकर विमल-वाहन नामक मुनि से जाकर दीक्षा ले ली।

और तप करके वह अहमिन्द्र हुआ। उस वक्त की स्थिति इस प्रकार है—

विमान : विजय

शरीर की ऊंचाई, लेश्या, अवधिज्ञान, आदि सभी स्वर्ग के सुख भोगकर वे अयोध्या नगरी के राजा स्वयं कर की महारानी सिद्धार्थ के गर्भ में मास वैशाख की षष्ठी के दिन सातवें शुभ नक्षत्र अर्थात् पुनर्वसु में आये और तदनन्तर नौ माह बाद माघ मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन अदितियोग में प्रकट हुये।

इन्द्र का आसन कांप उठा।

अतः इन्द्र और शचिदेवी ने उनका सुमेरु पर्वत पर दिव्य सिंहासन पर अभिषेक करके उनका नामकरण 'अभिनन्दन' के नाम से किया।

बाल चन्द्रमा की कांति से युक्त भगवान अभिनन्दन का यश चारों ओर फैलना शुरू हुआ। उत्पन्न होते ही वे समस्त गुणों से अंकित थे। इसी प्रकार 'उनका यश फैलता गया।

उन्होंने जिस प्रकार राजपाठ सम्हाला था वह अनुकरणीय था : मगर जो संसार का मार्ग दर्शन करने आते हैं उन्हें ये सुख कब बांध पाते हैं।

एक दिन—

बादल घिरे हुये थे।

अभिनन्दन देव आकाश में मेघों की शोभा देख रहे थे।

उन्होंने देखा बादलों ने एक सुन्दर महल की रचना की।

फिर—

फिर बादल छिटक गये।

महल भी धराशायी हो गये।

अचानक उनके मन में आया कि यह क्या जीवन है?

आज सुख कल दुख।

और मनुष्य—

वह क्या है?

केवल कर्मों का दास। कभी सुख, कभी दुख। कभी सुख में सुखी और कभी दुख से पीड़ित। जब शरीर ही अपना नहीं तो फिर किसी और का क्या?

उन्होंने यह भी विचार किया आयु के रहते हुये भी मरण नहीं होता है, मगर आयु के न रहते भी मरण नहीं होता। अतः जो मरने से डरता है, उन्हें सबसे पहले आयु से डरना चाहिये। सब सम्पदायें मेघों के उस सुन्दर महल की भांति हैं जो पानी पर जमी हुई काई की भांति फट जाता है।

बस उन्हें वैराग्य हो गया।

एक महा मेधावी, महा प्रतापी राजा को वैराग्य हो गया है यह जानकर समस्त लोक में हलचल मच गई।

और एक पवित्र दिन हस्त चित्रा पालकी पर चढ़कर वे अग्रउद्यान मे पधारे वहां उन्होंने माघ शुक्ल द्वादशी के दिन एक हजार राजाओं के साथ उन्होंने जिन दीक्षा ली। तभी उन्हें मन पर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया।

अगले दिन वे आहार के लिये निकले तो साकेत के राजा इन्द्रदत्त ने पड़गाह कर उन्हें आहार दिया तथा पंचाश्चर्य की वृष्टि

हुई।

फिर शुरू हुआ एकान्त वास।

अठारह वर्ष तक उन्होंने एकांकी जीवन विताया।

फिर एक शुभ दिन दीक्षावन में अशोक वृक्ष पेड़ के नीचे वेला नियम लेकर ध्यानारूढ़ हो गये।

वह शुभ दिन था पौष शुक्ल की चतुर्दशी। पुनंवसु नक्षत्र सातवें योग में उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ।

शिष्ट और भव्य जीवों की बारह सभाओं के नायक भगवान अभिनन्दन स्वामी ने आर्य खण्ड की वसुधा पर दूर–दूर तक विहार किया।

वे जहां भी गये, जनता ने उनका पलकें बिछाकर स्वागत किया और सारी जनता धर्म मय होती गई।

उनके विषय में उत्तरपुराण में लिखा है—

जिन्होंने इन्द्री के द्वारा पंचकल्याणकों में उत्पन्न होने वाली पुण्यमयी लक्ष्मी प्राप्त की, जिन्होंने कर्म क्षय से होने वाली तथा अनन्त चतुष्टय से दे दीप्यमान अविनाशी अन्तरंग लक्ष्मी प्राप्त की जो रूप से रहित होने पर भी निर्मल गुणों के धारक रहे, मोहलक्ष्मी ने जिनका आलिंगन किया, जिनका उदय कभी नष्ट नहीं हो सकता और जो पूर्वोक्त लक्षमियों से युक्त रहे ऐसे श्री अभिनन्दननाथ भगवान सदा जयवंत रहें। जो पहले रत्न संचय नगर के राजा महाबल हुये, तदनन्तर विजय नामक अनन्तर वेमान से विजय अहमिन्द्र हुये, फिर ऋषभ नाथ तीर्थंकरों के वेश में अयोध्या नगरी के अधिपति अभिनन्दन राजा हुये जिन्होंने निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयों से विभाग कर समस्त पदार्थों का विचार किया है, अपने भय की विभूति को नष्ट करने के लिये देवी ने भक्ति से जिनकी स्तुति की है, जो तीनों लोकों के स्वामी हैं, निर्भय हैं और संसार के प्राणियों का भय दूर करने

वाले हैं, ऐसे अभिनन्दननाथ भगवान भव्य जीवों की विभूति को करने वाले हो।

जनता को धर्म का उपदेश।

चर अचर की हिंसा के विरुद्ध अहिंसा, सत्य एवं सम्यक्त ज्ञान सम्यक्त दर्शन, और सम्यक्त चरित्र का सोलह कारण भावनाओं समेत प्रतियापन करते हुये भगवान अभिनन्दन नाथ ने वैशाख शुक्ल षष्टी के दिन प्रातः काल के समय पुर्नवसु नक्षत्र में पावन परम मोक्ष पद प्राप्त किया।

(५)

फिर, आये भगवान सुमतिनाथ।

जम्बू दीप घात की खण्ड !

जम्बू दीप में मेरू पर्वत से पूर्व की ओर पुण्कलावती नाम का एक देश है उस देश में पुन्डर नाम का नगर है। उसमें रतिषण नाम का राजा राज्य करता था।

राजा क्या था, व्यसनों से रहित प्रजापालक धर्म अर्थ काम की वृद्धि में अति एक कुशल प्रशासक।

अचानक ही सोच बैठा—

इस संसार में जीव का कल्याण करने वाला क्या है !

एक ओर पर्याय रूपी भंवरों में रहने वाले दुर्जन्म है—

और दूसरी ओर दुर्भ कहां रूपी सांप।

क्या अर्थ और काम ?

'नहीं—यह तो संसार की वृद्धि का ही साधन है।

धर्म—

धर्म में पाप की सम्भावना हो सकती है। उस धर्म से सुख कैसा ? हां पाप रहित एक मुनि धर्म है केवल मुनी धर्म ही ऐसा धर्म है जिससे जीव सुख की ओर अग्रसर हो सकता है तो फिर यह राज्य क्या ?

यह साम्राज्य किस काम का ?

और इसके तुरन्त वाद उन्होंने अपने सुपुत्र अतिरथ को राज्य का भार सौंप कर अरहंत जिनेन्द्र भगवान की शरण में जाकर दीक्षा ले ली।

ग्यारह अंगों का अध्ययन—

मोह शत्रु से जीतने की इच्छा से अपने शरीर का भार भी त्याग दिया।

शरीर छुटा तो वैजयंत नामक विमान में अहमिन्द्र का पद प्राप्त किया और वहां का सुख भोगने के वाद, समाधिमरण के बाद अयोध्या नगरी के मेघरथ राजा की रानी मंगला के गर्भ में प्रवेश किया।

तिथि थी : श्रावण शुक्ला द्वितिया।

और इसके नौ माह वाद चैत महा के शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन पितृ योग अर्थात मेघा नक्षत्र में ही उन्होंने जन्म लिया।

जन्माभिषेक उत्सव का स्थान वही सुमेरू पर्वत था। वहाँ नाम रखा गया सुमति नाथ। तपाये हुए सोने के समान चमक लिये छाती पर शरीर के अवयव इस प्रकार थे मानों चन्द्रमा की किरणें ही हो।

उत्तर पुराण में भगवान सुमति नाथ का चित्रण करते हु भाव विभोर होकर कहा—

'जिन्होंने समस्त देवों को विस्मृत कर दिया है, सुमेरू पर्वत की शोभा बढ़ाई है। और कौरसों के सिवाय सप्तम अलौकिकरस के आस्वाद से सुशोभित हैं उसे उनके अधरों की अधर संज्ञा नहीं दी जिससे समस्त पदार्थों का उल्लेख करने वाली दिव्य प्रवृति प्रकट हुई है ऐसे उनके मुख की शोभा तो कही ही नहीं जा सकती। उनके मुख की शोभा वचनों से प्रिय तथा उज्जवल थी अथवा बचपन रूपी वल्लभ सरस्वती से चमक आ गई थी।'

भगवान सुमतिनाथ बचपन से ही न तो कभी हिंसा करते थे, न झूठ बोलते थे, वे हिंसानन्द, मृषानन्द, स्टोमानन्द, परि— ग्रहानन्द, आदि चारों रौद्र ध्यान से रहित थे। उनमें ये चार विचार ही थे।

(क) अनिष्ट संयोग

(ख। इष्ट वियोग

(ग) वेदना जन्म दुख

(घ) निदान

वे सदैव दिव्य अन्तरंग, माला वस्त्र और आभूषणों से सुशोभित सुन्दर समान उम्रवाली तथा स्वेच्छा से प्राप्त हुई स्त्रियों के साथ रमण करते थे। मगर यह तो संसारी सुख था। अचानक ही वे इस संसार से विरक्त हो गये और अल्प सुख के विषय में उनकी मान्यता इस प्रकार की थी उन्हें आश्चर्य होता था कि आखिर अल्प सुख की इच्छा रखने वाले बुद्धिमान मानव इसी विषय रूपी मांस में क्यों लपट हो रहा है अगर ये निसार के प्राणी मछली के समान आचरण न करें तो इन्हें पाप रूपी बंसी का साक्षातकार न करना पड़े। जो परम चातुर्य को प्राप्त नहीं है ऐसा मूर्ख प्राणी भले ही अहितकारी कार्यों में लीन रहे परन्तु मैं तो तीन ज्ञानों से रहित हूं फिर भी अहितकारी कार्यों में कैसे लीन हो गया।

और जब विरक्ति आई तो भगवान सुमितनाथ ने संसार के सभी राज्यपाट को छोड़ कर बैसाख सुदी नवमी को माघ नक्षत्र में प्रातः काल के समय सहेतुक वन में एक हजार राजाओं के साथ बेले का नियम लेकर दीक्षा धारण कर ली। संयम के प्रभाव से उसी समय मन पर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया।

कल का राजा आज का महान सन्त हो गया।

मुनि श्री सुमतिनाथ अगले दिन आहार के लिये सौमन

नामक नगर में गये। सौमनस नगर के राजा पद्मम राजा ने उन्हें आहारदान प्रदान करके स्वयं प्रतिष्ठा हासिल की थी। उनकी दिनचर्या बड़ी शांत थी। वे बड़ी निष्ठा से मौन रहते थे उनके समस्त पाप शांत हो चुके थे। और वे तप निष्ठा में निरन्तर प्रगति कर रहे थे।

बीस वर्ष का एकान्त वास।

बीस साल की कठोर तपस्या करके वे पुनः सहेतक वन में आये। वहा प्रियंग वृक्ष के नीचे दो दिन का उपवास लेकर योग धारण किया।

यह शुभ घड़ी थी चैत्र शुक्ला की एकादशी।

सूर्य पश्चिम की ओर ढल रहा था।

भगवान सुमतिनाथ को केवल ज्ञान हो गया।

सम्यक्त केवल ज्ञान...

और भगवान सुमतिनाथ ने अठारह क्षेत्रों में बिहार कर भव्य जीवों के लिये उपदेश दिया था। जिस प्रकार अच्छी भूमि में बीज बोया जाता है तो उससे अच्छी फसल प्राप्त होती है। उसी प्रकार भगवान सुमतिनाथ ने अपनी दिव्य वाणी का जो बीज बोया उससे युगों २ तक रत्न जय रुपी फल प्राप्त होता रहेगा। और फिर आया वह क्षण जब भगवान सुमतिनाथ ने एक हजार मुनियों के साथ सम्मेद शिखर पर प्रतिमा योग धारण किया यहीं चैत शुक्ल एकादशी के दिन माघ नक्षत्र में शाम के समय निर्वाण प्राप्त किया ?

भगवान सुमतिनाथ के समय-समय पर कुछ उल्लेखनीय नाम इस प्रकार है।

स्वर्ग से आने पर गर्भ कल्याण के उत्सव पर सद्योजात।

जन्म अभिचर के समय पर : नाम

दीक्षा कल्याण पर : अघोर

केवल ज्ञान प्राप्ति होने पर : इन्सान ।

निर्वाण होने पर : तत्पुरुष ।

(६)

नगर का नाम सुमित्रा ।

राजा—महाराजा अपराजित ।

और राजा ऐसा कि मेघ भी समय पर आते थे ताकि किसानों को भरपूर धन्य- धान्य दिया जा सके। इसका कारण था कि राजा दानवीर था और दान का बोया फल क्या कभी खाली जाता है जो यह जाता।

अपराजित में सभी गुण मौजुद थे। नीति कर्म, दया न्याय, त्याग और उदारता ! और सारा काम सही चल रहा था अचानक उन्हें वैराग्य हो गया और विरक्ति होने तक ऋजु सूत्र नय से सब पदार्थों को भगुर समझकर अपराजित ने अपना समस्त वैभव अपने पुत्र सुमित्र को दे डाला और स्वयं बन में केवली के निकट जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

दीक्षा—

ग्यारह अंगों का तत्व ज्ञान।

और फिर समाधि मरण।

राजा अपराजित ने उन ग्रैवेयक के प्रतिनिष्ट विमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया और स्वर्ग के सुख भोगकर पुनः पृथ्वी पर आये तो उनके पिता वने एकाधरण माता का नाम था सुसीमा। सुसीमा एकाधरण की सुन्दर रानी थी। जब चित्रा नक्षत्र और चन्द्रमा का संयोग हो रहा था तो माघ कृष्ण षष्टी को रानी ने सोलह सपने देखे थे। और इसके वाद कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की त्रियोदशी के दिन स्पष्ट योग में रानी ने लाल कमल की भांति कान्ति वाले पुत्र को जन्म दिया। जिसे जन्म, अभिषेक के बाद पद्म प्रभु नाम दिया गया।

पद्म प्रभु के आगमन से ही संसार में सुख-वृष्टी होने लगी। और जब पद्म प्रभु को राज सौंपा गया तो सभी और मंगल कार्य सम्पन्न होने लगे। भय और कष्ट समाप्त प्रायः हो गये। एक कवि ने कहा है कि उस रात की स्थिति यह थी कि दानियों को दान लेने वाले नहीं मिलते थे। पद्म प्रभु राजा बने तो जनता जैसे निद्रा से जाग गई मगर भगवान पद्म प्रभु के जीवन में एक समय ऐसा भी आया जब वे सोचने लगे। इस संसार का क्रम ऐसा है जो मैंने नहीं देखा, नहीं सुना, नहीं सोचा, नहीं सुंघा, नहीं पाया।

आखिर यह जीव बार बार इस संसार में क्यों आता है।

और इसी प्रकार के तत्व ज्ञान के अभिभूत होकर उन्होंने संसार से वैराग्य ले लिया। जो पालकी उन्हें दीक्षा स्थल पर लेकर गई उसका नाम था निवृति।

निवृति नाम की यह पालकी पर सवार होकर पद्म प्रभु मनोहर नाम के वन में चले गये।

तिथि : कार्तिक शुक्ल त्रयादशी का समय नक्षत्र चित्रा में उनके साथ एक हजार राजाओं ने दीक्षा ली।

दीक्षा के दूसरे दिन हजारों उनको खिलाने वाले सम्राट भिक्षा देने के लिये निकल पड़े लेकिन वह तो विधिपूर्वक ही आहार करते हैं। वर्द्धमान नामक नगर के राजा सोमदत्त ने उन्हें विधि पूर्वक आहार दिया।

शुभ कार्य से पुण्य का समय हुआ और इन उपायों से काम में लाया गया—

—गुप्ति।

—समिति।

—अनुप्रेक्षा।

—धर्म।

—परिषह जय।

—चरित्र।

इन छः उपायों से सर्व समूह का भंवर समाप्त हो गया और तप के द्वारा निर्वस होकर उन्होंने छः माह एकान्त वास किया।

फिर सपक श्रेणी पर आसीन होकर उन्होने चारों घातिया कर्मो का विनाश कर दिया।

और इसके बाद आई चैत्र पूर्णिमा।

सूरज पश्चिम में ढल रहा था।

नक्षत्र था चित्रा।

भगवान पद्म प्रभु को केवल ज्ञान प्राप्त हो गया था।

और केवल ज्ञान के बाद हुआ लोक कल्याण का कार्य। जहां तक नजर उठ सकती थी, जहां धरती और आकाश में मिल सकते हैं वहां तक भगवान का शुभ सन्देश पहुँच गया।

जीव अपने पुर्व भवों में जिन पदार्थों का अनन्नत वार भोग चुका है उन्हें ही वह वार वार भोगता है।

बस अभिलाषा के सागर में यह जीव गोता लगाता रहता है।

शरीर क्या है?

शरीर रोग रूपी सांपों की वामी है और यह जीव देख रहा था कि हमारे इष्ट जन इन्हीं रोग रूपी सांपों से काटे जाकर नष्ट हो रहे हैं। फिर भी यह शरीर में अविनाशी मोह कर रहा है जबकि आज तक किसी ने आयु के साथ सहवास नहीं किया है।

केवल उसी को यह संसार अच्छा मालूम दे सकता है जो हिंसादि पांचों पापों को धर्म मानता हो। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, और परिग्रह, पाप हैं इन्हें दुव्यहारी संज्ञा देने वाला ही सम्भवतः मूर्ख है।

विद्वान लोग केवल उसी का ध्यान करते हैं जिनसे पाप औ/

पुण्य दोनों उपलेशों का नाश हो जाये…

और फिर आई फागून कृष्ण चतुर्थी। जब भगवान पद्म-प्रभु निर्वाण पद पर आसीन हो गये।

(६)

देश सुकच्छ नगर क्षेमपुर और राजा नन्दिषेण। इतना सुघड़ और सुन्दर राज्य किसका हो सकता है जिसके राज्य का काज बगैर मंत्री के चल रहा था। उसका सबसे बड़ा चालक था उसका उपकार। संसार में जहां से सूरज उगता था, और जहां सूर्यास्त होता था, सुख और समृद्धि का साम्राज्य समाप्त होता था, वहां तक अपना साम्राज्य स्थापित करके उसे इस लोक के बाद परलोक की चिन्ता हुई और संसार से विरक्त होकर दर्शन मोह और चरित्र मोह का नाश करके अनन्त हृदय को धारण करके राजा नन्दि-षेण अपने पद पर अपने सुपुत्र धनपति को बिठला कर अनेक राजाओं के साथ केवली भगवान के निकट दीक्षा ग्रहण की और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं से अभिभूत होकर इस नाशवान शरीर को त्याग कर सुभद्र नामक मध्य विमान में अहमिन्द्र के रुप में स्वर्ग के सुख को भोगा।

और फिर—

वही काशी नगरी।

वही इक्ष्वाकु वंश का प्रतापी राजा सुप्रेतिष्ठित। भगवान सुपार्श्वनाथ के रुप में अगले तीर्थंकर के रुप में सुप्रतिष्ठित की प्रिया महारानी पृथ्वीजेष्णा के गर्भ में भाद्रपद शुक्ल षष्टी के दिन विशाखा नक्षत्र के दिन आगमन किया और रानी को सोलह प्रसन्नता वर्धक सपने आये।

नो माह बाद—

जेठ शुक्ल द्वादशी।

शुभ योग : अठितमित्रा ।

जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम रखा गया सुपार्श्व ।

सुपार्श्व एक कुशल राजा बने, मगर समय आने पर उन्हें पूरे संसार से विरक्ति हो गई और उन्होंने महसूस किया कि सर्दी के बाद गर्मी, गर्मी के बाद बरसात आती है। स्थिरता न बसन्त में है न वर्षा में, तो फिर इस जीवन का क्या, इस सुख और सम्पदा का क्या !

उन्होंने अपने को धिक्कारते हुए कहा—'समस्त पदार्थ नाशवान है। राज लक्ष्मी इसी प्रकार शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाली तथा माया से भरपूर है। मुझे धिक्कार है। वास्तव में धिक्कार है। जिनके चित भोगों के राग से अन्धे हो रहें हैं। ऐसे चित में शांति कहां ? संसार तो है ही त्याग्य ?

और विरक्ति के उस पुनीत अवसर पर मनोमति नाम की पालकी पर चढ़कर सुरकेतु वन में चले गये जहां ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को सांयकाल के समय विशाखा नक्षत्र में वेला का नियम लेकर वे दीक्षित हुए और अगले दिन सोमखेटक नगर में जाकर राजा महेन्द्रदत्त के महल में विधी पूर्वक आहार ग्रहण किया।

नौ वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में मौन रहे, फिर दो दिन का उपवास लेकर वे शिरीष वृक्ष के नीचे बैठ गये।

फाल्गुन कृष्णा षष्टी के दिन उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ।

और इसके बाद शुरु हुआ अपार जन कल्याण।

दूर दूर तक धर्म अमृत का रसपान करते, जन जन का उद्धार कराते हुए अन्ततः वे सम्मेद शिखर पर जा पहुंचे।

विहार बन्द कर दिया गया।

और आ गई पुनीत वेला।

फाल्गुन कृष्णा सप्तमी के दिन विशाखा में जब भगवान

भास्कर कारक आलोकित हो रहा था तो वे प्रतिमायोग में धारण करके निर्वाण को प्राप्त हुए।

(७)

भगवान चन्द्रप्रभू।

ऐसे तीर्थंकर जिनकी प्रभा के द्वारा सारी सभा ही शुद्ध हो जाये। नाम लेना ही जो पाप कर्म को नष्ट कर देता है। ऐसे भगवान चन्द्र प्रभू के सात भवों का उज्जवल चरित्र प्रस्तुत करते हुये उत्तरपराण में कहा गया है।

मध्यम लोक के पुष्कर द्वीप के बीच में मानुषोत्तर पर्वत है। जिसके निकट सुगन्धि नामक देश में धर्म दया तथा मानवता श्री बढ़ती ही जाती थी और उसमें श्रीपुर नगर की तो कल्पना ही क्या ? ऐसा लगता था कि स्वर्ग श्रीपुर की शोभा देखकर लज्जित होता था। उस राज्य के स्वामी थे श्रीषेण। विकार से वंचित हर प्रकार के गुणों से शोभित थे। उनकी पत्नी श्री कांता नाम की स्त्री थी जो उन्हीं के गुणों के अनुरुप थी। मगर उसमें एक ही दोष था कि वह मां नहीं बन सकी थी और राजा श्रीषेण इस दुःख से दुखी होकर संसार से विरक्त हो गया था। तब पुरोहितों ने उसे जिन प्रतिमाओं की स्थापना का सुझाव दिया, जिसे हर्ष–सहित स्वीकार करके जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई।'

भगवान की श्रद्धा पूर्ण पूजा के बाद रानी ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम रखा गया श्री वर्मा।

और जब श्री वर्मा कुछ बड़ा हुआ तो एक दिन सिवेकर वन के उद्यान में जिनराज श्रीपद्म नामक मुनि पधारे राजा ने उनको नमस्कार किया तीन प्रदक्षिणा दी और उन्हें यथास्थान आसन दिया आसन पर बिठला राजा ने धर्म का स्वरूप पूछा और राजा ने वस्तु तत्व का ज्ञान प्राप्त किया। राजा को उपदेश मिला।

कि भोगों की तृष्णा त्याग दें।

धर्म की तृष्णा में अपना मन लगाओ।

बस राजा विरक्त हो गया।

श्रीवर्मा को राज्य सौंपकर राजा ने पद्म मुनी से दीक्षा ले ली और श्री वर्मा ने और भी कुशल ढंग से राज्य का संचालन करना शुरू किया।

राज्य चल रहा था।

सब ओर कुशल थी।

सावन आने में देर नहीं थी। आषाढ़ बीत चला था। उस दिन भी आषाढ़ मास की पूर्णिमा थी आसमान में भयंकर बादलों का दल घूम रहा था। श्री वर्मा सामायक से निबटकर रात को महल की छत पर बैठा था।

अचानक बिजली चमकी।

फिर गड़गड़ाहट।

और इसके साथ आकाश से एक अल्का पात्र हुआ।

जब आकाश का यह हाल तो इस संसार की क्या स्थिति ऐसे असार संसार से क्या लाभ बस श्रीवर्मा भी संसार से विरक्त हो गये। उन्होंने अपना राज्य पाठ अपने सुपुत्र श्रीकांत को सौंप दिया और जिनेन्द्र भगवान से दीक्षा लेकर बहुत समय तक तप किया अन्त में विधि पूर्वक सन्यास मरण करके प्रथम स्वर्ग के श्रीप्रभू विमान में श्रीधर नामक देव बना।

वहां के सुख भोग कर जब पुनः इस लोक में आने को प्रस्तुत हुआ तो राजा अजित सैन की रानी अजित जय ने एक शुभ समय प्रातः के प्रथम प्रहर में आठ शुभ स्वप्न देखे। जो इस प्रकार थे—

—हाथी

—बैल

—सिंह

—चन्द्रमा

—सूर्य

—कमलों से शोभित सरोवर

—शंख और कलश

और इसके बाद श्रीधर इस रानी के कोख से उत्पन्न हुये अगले दिन चंद्रप्रभु नामक तीर्थंकर अशोक बन में पधारे राजा ने उनकी उचित पूजा वन्दना की धर्मोपदेश सुना और ससार से विरक्त होकर केवल ज्ञानी होकर इस संसार से विदा हुये।

राजा श्रीधर ने राजा के रूप में प्रजा के महान सुख का कार्य किया और प्रजा के हित में अपना जीवन समर्पित कर दिया।

दस भोगों के प्रति उसकी श्रद्धा घटनी जा रही थी। वह संसार से विरक्त होता जा रहा था। दस भोग इस प्रकार है—

१. भाग्य

२. भोजन

३. शैया

४. सेना

५. सवारी

६. आसन

७. निधि

८. रत्न

९. नगर

१०. नाटय

राजा ने एक वार अरितन्छि नामक मुनि को आहार देकर जब नवीन पुण्य का बंध किया। अगले दिन वह राजा

जिनेन्द्र प्रभु की वन्दना करने के लिये मनोहर नामक उद्यान में गया।

भगवान जिनेन्द्र के उपदेशों से प्रभावित होकर उसने संसार त्याग दिया और नभस्ति पर्वत के अग्र भाग पर शरीर छोड़ कर सोलहवें स्वर्ग के शान्तकार विमान में अच्युतेन्द्र बना। वहां के सुख भोग कर मंगला वती नामक देश की ओर अग्रसर हुआ।

मंगलावती देश में उस वक्त राजा जनक का राज्य था। उनकी रानी का नाम कनक माला था। उसके गर्भ उत्पन्न बालक का नाम रखा गया पदमनाभ। पदमनाभ ने सोमप्रभा आदि रानियों से शादी की और जिस बालक को जन्म दिया उसका नाम रखा गया स्वर्णनाथ।

पदमनाथ पुत्र गोत से उत्पन्न होकर एक दिन जिन राज के धर्मोपदेश से प्रमाणित होकर संसार से विरक्त हो गये।

मोक्ष की शरणभूत चारों आराधनाओं से सम्पन्न समाधि-मरण से शरीर छोड़ कर वैजयंत विमान में अहमिंद्र बने और दिव्य सुख का भोग करते रहे।

उस जीव को पुनः मानव शरीर धारण करना पड़ा।

चन्द्रपुर के राजा का नाम महासेन।

लक्ष्मणा उसकी रानी थी, जिसने चैत्रकृष्ण पंचमी को रात में सोलह सपने देखे और पौष कृष्ण एकादशी को शक्रयोग में देवपुत्र को जन्म दिया जिसका सार्थक नामकरण हुआ चन्द्र प्रभु।

बड़े होकर उनका सुन्दर ढंग से राज्यभिषेक किया। बहुत दिन सुख का राजपाट भोग लेने के बाद एक दिन दर्पण में अपना मुख देख कर उनका मन कहने लगा—

—यह शरीर तो नाशवान है।

—वह सुख ही क्या जो नाश हो जाये।

—जब वियोग होने ही वाला है तो संयोग का अर्थ क्या !

—अनित्य को नित्य मानना कितनी बड़ी मूर्खता है।

और वे बड़े दुखी हुये।

उनका मन संसार से विरक्त हो गया।

उन्होंने अपने पुत्र वरचन्द्र का राज्यभिषेक करके बिमला नाम की पालकी में सर्वतुर्क नामक वन में चले गये।

पौष कृष्ण एकादशी।

नक्षत्र—अनुराधा।

एक हजार राजाओं के समेत दीक्षा ग्रहण करके अगले दिन र्वलिन नामक नगर में आहार के लिये निकले और वहां के राजा सोमदत्त से नवधाभक्ति पूर्वक आहार पाकर संसार सुख से विरक्त, तपनिष्टा में लीन हो गये।

मन को साधने का क्रम चला।

आत्मोत्थान प्रारम्भ हुआ और शुरू हुआ वस्तु, वृति वचन के भेद से निरंतर चिन्तन।

अन्तरंग और वाहरंग तप साधना शुरू हुई।

यह धारण पुष्ट होती गई कि शरीरादि पदार्थ अनित्य हैं, अशुधि हैं, अपतिम हैं।

धीरे धीरे प्रतिमाओं का योग सम्पूर्ण होता गया और आ गई वह फागुन वदी सप्तमी की शुभ घड़ी।

सांय काल का घना अन्धेरा घनी भूत हो रहा था।

मगर—

अनुराधा नक्षत्र में विश्व में नयी ज्योति जल रही थी।

ज्योति चन्द्रप्रभु भगवान के, केवल ज्ञान की।

शुक्ल ध्यान के प्रभाव से उन्होंने मोह रूपी शत्रु को नष्ट कर दिया।

सम्यक दर्शन सम्यक ज्ञान में बदल गया।

उन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया :—

—ज्ञानवरण

—दर्शनाकरण

—मोहनीय

—अन्तराय

और शरीर सहित निम्न लब्धियां पाकर शरीर सहित संयोग केवली जिनेन्द्र हो गये :—

—परावगठ सम्यक दर्शन

—क्षाविक ज्ञान

—दर्शन

—अन्तिम यथा ख्यात चरित्र

इसके अलावा वे जनसमूह को निम्न विषय पर प्रमाणिक ज्ञान प्रस्तुत करते थे—

—गति —गुणस्थान

—जीव —नय

—समास —प्रमाण

उनके समय में सिंहों ने क्रूरता छोड़ दी थी और अन्य जीवों ने भी शान्ति को धारण लिया था। सबको मार्ग दिखलाकर भगवान ने अपना चन्द्रप्रभु नाम सार्थक किया और समस्त आर्य खंड के देशों में विहार करके धर्म तीर्थ की प्रकृति करते हुए सम्मेद शिखर पर पहुंचे जहां सिद्ध शिला पर एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमायोग धारण कर एक माह तक आरूढ रहे। और जब फागुन कृष्ण एकादशी के दिन जब ज्येष्ठा नक्षत्र था। सांय काल का अन्धेरा घनीभूत हो रहा था तो योग निरोध कर चौदहवें गुण स्थान को प्राप्त करके चौथे शुभ ध्यान के द्वारा शरीर को नष्ट कर सिद्ध हो गये।

(६)

महाभाग, महा पूज्यनीय भगवान पुष्पदंत। जो संसार के इस पाप मरूस्थल में सघन छाया दार वृक्ष के समान शरण अशरण, भव भय तारण हार है, उन महान तीर्थंकर का जीव पहले जन्म में महारश्त नामक राजा हुए। वे नवे महान तीर्थंकर थे, जिन्होंने पुण्डरीकणी नगरी में महा पदम नामक राजा के रूप में अवतरण किया था।

राजा समस्त प्रकार के सभी सुख भोग कर, प्रजा को सुख देकर एक दिन भूतहित नाम के केवली से धर्मोपदेश सुना और आतम ज्ञान पाकर वह संसार से विरक्त हो गया। अपने पुत्र को राज्य देकर वह तपस्या में लीन हो गया। सोलह कारण भावनाओं के चिन्तवन मैं तत्पर रहने के बाद उन्होंने समाधि-मरण धारण किया। इस असार संसार को छोड़ कर प्राणत स्वर्ग का इन्द्र बना।

वहां का स्वर्ग सुख भोग कर कालन्दी नगर में सुग्रीव नाम के राजा की रानी जय-रामा के गर्भ से उत्पन्न हुये।

वह फाल्गुन कृष्ण नवमी के दिन मूल नक्षत्र की शुभ घड़ी थी। उस रानी ने सोलह सपने देखे थे। और माघ शीर्ष की शुक्ला प्रतिपदा को चैत्रयोग में जिस बालक ने जन्म लिया उसका नामाभिषेक पुष्प दंत के रूप में किया गया।

संसार के सुख भोग कर जब एक दिन पुष्पदंत भगवान ने उल्कापात देखा तो उन्हें लगा कि यह महल उनका न होकर अनादिकालीन महा मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने वाली दीपिका है और अब तक जो काम, शोक, भय, उन्माद, स्वपन चोरी, आदि पदर्थो को जो असत्य हैं उन्हे सत्य माना जाता रहा है यह सबसे बड़ी भूल के रूप में प्रकट हो रहे थे। संसार में न तो काई वस्तु स्थिर है, न शुभ। न सख देने के वाली है

और न ही कोई पदार्थ आत्मा का है। आत्मा से पूरा संसार अलग है।

ऐसा सोच कर वे संसार से विरक्त हुये।

उन्होंने अपना राजपाट अपने पुत्र सुमति को सौंप दिया।

वे सूर्यप्रभा नाम की पालकी में सवार होकर पुष्कवन में आये और माघ मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदी के दिन सायंकाल जब सूर्य अस्त हो चुका था तो वेला का नियम लेकर एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गये।

दीक्षा के तुरन्त बाद उन्हें मन प्राय: ज्ञान हो गया।

अगले दिन व शैलपुर नामक नगर में प्रविष्ट हुए, जहां के राजा पुष्पमित्र ने उन्हें आहारदान देकर पंचश्चार्य प्राप्त किये

फिर आई एकान्तवास की अवधि।

चार वर्ष—

पूरे चार वर्ष के बाद न्याय वृक्ष के नीचे वे दीक्षावन में अनन्त चतुष्टय को प्राप्त हो गये। और इतने लोक प्रिय हुये कि समवशरण बनाया गया। बारह सभा के आदरणीय पुष्पदंत भगवान ने समस्त आर्य खंड देशों का विहार किया और अन्त: में सम्मेद शिखर पर पहुँच गये। जहां अश्विन शुक्ल अष्टमी को योग धारण करके मोक्ष को प्राप्त हो गये।

(१०)

दसवें तीर्थंकर।

भगवान शीतलनाथ के राज्य के बाद यह निम्न दान चलने शुरू हुए जो केवल दरिद्रों को ही अच्छे लगते हैं—

कन्यादान	हस्तिदान
सुवर्णदान	कम्बदान
गोदान	दासीदान
तिलदान	रत्नदान

भूमिदान   ग्रहदान

मगर भगवान शीतलनाथ का तो सम्पूर्ण चरित्र ही वैभव से युक्त करने वाला है:—

कहते हैं कि राजा 'पद्मगुल्म, सुसीमा राज्य का राजा था जो सामदाम दण्ड भेद नामक राज ज्ञानों का प्रकार पंडित था और भली भांति राज्य का संचालक कर रहा था।

एक वार जब बसन्त ऋतु आई तो अचानक राजा पद्मगुल्म कामदेव से पीड़ित हो गया और वसन्त लक्ष्मी के समागम से उसे अपार सुख मिला। मगर जिस प्रकार हवा से उड़ाई मेघमाला कहीं भी जाकर छिप सकती है, उसके प्रकट समय आने पर बसन्त का उत्सव समाप्त हो गया और इस परिवर्तन से राजा बहुत अधिक व्यथीत हुआ।

उन्होंने विचार किया कि काम ही दुष्ट है। यह पाप समूचे संसार को दुखी करता है। सबके मन में रहता है और···

संसार से विरक्त होकर वह आनन्द नामक मुनिराज की शरण में पहुँच गया। उनसे दीक्षित होकर वह समस्त परिग्रह से विमुख हो गया।

उन्होंने विपाक सूत्रों का ध्यान किया। चिरकाल तक तपस्या की। उन्हें तीर्थंकर कर्म बन्ध हुआ तो सम्यक दर्शन ज्ञान और चरित्र नामक तीनों आराधनाओं को सम्पूर्ण करके समाधिधारण करके आनत नामक स्वर्ग में इन्द्र हुये और वहां का सुख भोगकर मलय देश के हृदरथ राजा के परिवार में आने का निश्चय हुआ हृदपुर पोदनपुर का स्वामी था और उसकी पत्नी सुनन्दा महारानी ने रात्रि के अन्तिम पहर में सोलह सपने देखे।

यह शुभ घड़ी थी चैत्र कृष्ण अष्टमी का पूर्वापाढ़ा नक्षत्र।

और फिर नौ माह बाद—

माघ कृष्ण द्वादशी के दिन विश्वयोग में उन्हें पुत्र रत्न प्राप्त

हुआ देवों ने सुमेरु पर्वत पर अभिषेक करके शीतलनाथ नाम रखा।

यौवन अवस्था आने पर भगवान शीतलनाथ ने अपने पिता का पद प्राप्त किया और जब उनकी आयु का चौथाई भाग शेष रहा तो एक बार भगवान शीतलनाथ विहार करने के लिये वन में गये। वहां उन्होंने देखा कि पाले से जो अभी सभी कुछ ढका था वह सभी कुछ स्पष्ट हो गया। उन्हें लगा कि वह मोह से मुक्त हो गया हैं।

उन्हें लगा कि सबसे बड़ा भारी मोह यह है कि मैं सुखी हूँ यह सुख है और यह सुख पुण्योदय से फिर भी मुझे मिलेगा—

संसार से विरक्त होकर भगवान शीतलनाथ शुक्रप्रभा नाम की पालकी पर सवार होकर सहेतुक वन में चले गये।

यह शुभ घड़ी जब आई तो माघ कृष्ण की द्वादशी थी जब पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में दो उपवास का नियम लेकर एक हजार राजाओं के साथ संयम धारण किया।

अगले दिन आरिष्ट नगर के राजा पुर्नवसु ने बड़े हर्ष के साथ उन्हें खीर का आहार दान देकर सन्तुष्ट हुआ देवों ने पंचाश्चर्य की वर्षा कि।

फिर आई एकान्त वास की वेला।

भगवान शीतलताथ ने तीन वर्ष तक, तपस्या की इसके बाद भनवान शीतलनाथ जी वेल के वृक्ष के नीचे दो दिन के उपवास के विषय को लेकर विराजमान हो गये जहां पौष कृष्ण की चतुर्दशी के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में जब सूर्य डूब रहा था तो भगवान शीतलनाथ के अन्तर में केवल ज्ञान की ज्योति जल उठी।

जन कल्याण और अपार जीव कल्याण के बाद जब जीवन अवधि में एक माह रह गया तो भगवान शीतलनाथ सम्मेद शिखर पर पधारे अश्विन शुक्ला अष्ठमी के दिन सायंकाल के समय

पूर्वाषाढ नक्षत्र में समस्त कर्म शत्रुओं को नष्ट करके मोक्षगामी हुये ।

(११)

नगरी का नाम था क्षेमपुर । राजा का नाम नलितप्रभ । सुन्दर ढंग से राजकाज चलाते हुये एक दिन उसे पता लगा कि सहस्त्रार वन में जिनेन्द्रदेव आये हैं अतः वह उनकी वन्दना करने गया और उनके धर्मोपदेश से इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपने पुत्र सुशोभित को राज्य सौंप कर अन्य सहयोगियों के साथ संयम धारण कर लिया ।

संयम अवस्था में ग्यारह अंगों को विधि व्रत ग्रहण करने से समाधि मरण के बाद सोलहवें अच्युत स्वर्ग में पुष्पोत्तर विमान में अच्युत नामक इन्द्र बना और वहां के सुख भोगने के बाद सिंह पुर नगर के राजा विष्णु की पत्नी नन्दा के गर्भ में आने का निश्चय किया ।

श्री श्रेयास स्वामी ने अपने महामणी के समान तेजस्वी, समुद्र के समान गंभीर, चन्द्रमा के समान, शीतल और धर्म के समान कल्याणकारी बनाया ।

सबको सुख देने वाले राज्य को चलाते-२ एक दिन बसन्त रितु का परिवर्तन देखकर वें संसार से विरक्त हो गये । उन्होने सोचा जिस प्रकार काल ने पूरे संसार को नष्ट कर रखा है, उसी प्रकार कर्मों ने प्रत्येक जीव को नष्ट कर रखा है, तो नाश्वान की क्या हस्ती है । अतः सबसे बड़ा सूत्र है कर्मों से छुटकारा

ऐसा विचार करके उन्होंने अपने पुत्र को राजपाट सौंप दिया और स्वयं मनोहर उद्यान की ओर चल पड़े । जिस पालकी पर सवार होकर वे चले थे उसका नाम था विमलप्रभा ।

मनोहर वन आ गया ।

भगवान श्रेयांस ने दो दिन के लिये आहार त्याग दिया ।

और फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन एक हजार सहयोगियों के साथ दीक्षा लेकर सम्पन्न हो गये।

उस समय उन्हें चौथा मन पर्य्य ज्ञान हुआ और अगले दिन सिद्धार्थ नगर के राजा नन्द ने उन्हें भक्ति पूर्वक आहार दान देकर पुण्य प्राप्त किया। दो वर्ष के एकान्त वास के बाद तुम्वर वृक्ष के नीचे माघ कृष्ण अमावस्या को श्रवण नक्षत्र में केवल ज्ञान हो गया। और अन्य तीर्थंकरों की भांति सम्मेद शिखर पर पहुँच कर योग निरोध करके एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमा योग किया और श्रावण शुक्ल पूर्णमासी की सायं धनिष्टा नक्षत्र में मोक्ष गति प्राप्त की।

(१२)

अगले तीर्थंकर भगवान वासू पुज्य...बारहवें तीर्थंकर।

प्रसिद्ध नगर रत्न नगर के राजा के पद्मोतर। जिनके विषय में कहा जाता है कि राजा की गुणमयी कीर्ति सबके वचनों में रहती थी, पुण्यमयी मूर्ति सबके मन में रहती थी और धर्म-मयी वृत्ति सबके चित मे रहती थी। उसके वचनों में शांति थी, चित्त मे दया थी, शरीर में तेज था, बुद्धि में नीति थी, दान में धन था, जिनेन्द्र भगवान में भक्ति थी और राजा में शत्रुओं को परास्त करने का प्रताप था।

एक दिन राजा ने मनोहर पर्वत पर प्रतिष्ठित युगन्धर जिन राज की भक्ति पूर्वक आराधना की। और उनके धर्मोपदेश से संसार से विरक्त होकर सहमीत हो गया और इस निश्चय पर वह पहुँच गये कि लक्ष्मी माया है। कभी सुख और दुख। जीवन केवल मृत्यु तक है। संयोग वियोग भी स्थिर नहीं है। इस-लिये शरीर से प्रेम करने का क्या अर्थ? शरीर से प्रेम करके आदमी कुछ नहीं पा सकता।

यह सोचकर राजा ने अपना राजपाट अपने पुत्र को सौंप

कर आत्म शुद्धि के लिये अन्य राजाओं के साथ दीक्षा ले ली और ग्यारह अंगों को धारण कर तीर्थंकर नामक कर्म वन्ध को प्राप्त हुआ। समाधिमरण के वाद महाशुक्र विमान में स्वर्ग जाकर सुख भोगने लगा। मगर मोक्ष मनुष्यों को मिलता है देवताओं को नहीं इस कारण देव गति में जाने के बाद जीव को पुनः मनुष्य गति में आना पड़ता है अतः चम्पानगर के वसु पूज्य नामक राजा की रानी वमावती को आषाढ़ कृष्ण षष्टी के दिन चौबिसवे राजा भद्र नक्षत्र में सोलह सपने दिखाई दिये और फाल्गुन माह की कृष्ण पक्ष की चतुर्थदशी को शतभिषा नक्षत्र में जिस वालक ने जन्म लिया उसका सुमेरु पर्वत पर अभिषेक करके उस वालक का वासू पूज्य नाम दिया गया।

उत्तर पुराण का कथन हैं कि इस तीर्थंकर की क्रांति कुंकु की भांति थी। और जव वे वचपन से युवावस्था और युवावस्था से वैराग्य की तरफ झुके। संसार जव उन्हें असार लगाने लगा। जव उन्हें महसूस हुआ कि वियोग अवश्य भावी है चारों गतियां दुख और सुख अर्चना दुख रुपी सुख प्रदान करने वाली है तो उन्होंने वन की ओर प्रस्थान किया—

एक दिन का उसवास—

फिर फाल्गुन कृष्ण चतुदर्शी के दिन सांयकाल के समय विशाखा नक्षत्र में सामयिक नाम का चरित्र ग्रहण करके छः सौ छियत्तर राजाओं के साथ दीक्षा लेकर मन पर्य ज्ञान के धारक हो गये।

अगले दिन आहार के लिये महाननगर में प्रवेश किया। जहां का सुन्दर राजा इन्हें आहार दान करके पुण्य का भागी वना।

इसके वाद एक वर्ष का एकान्तवास करके वासू पूज्य अपने दीक्षावन में आये और यहां कदम्ब वृक्ष की छांव में बैठकर उप-

वास का नियम लिया। मात्र शुक्ल द्वितीया के दिन सांय काल के समय विशाखा नक्षत्र में चार घातियां कर्मो को समाप्त करके केवल ज्ञान प्राप्त किया ।

समस्त आर्य खण्ड को अपनी धर्म वाणी अमृत से आवारित करके उन्हें अपने सुख की ओर ले जाकर उन्होंने घातिया कर्मो को घूमने के उपाय का मार्ग प्रदर्शित किया सब ओर धर्म वृष्टि से सबको सन्तुष्ट करके सुख के मार्ग पर अग्रसर किया । जब आयु के कुछ दिन बाकी रहे तो उन्होंने लेम्पायू की ओर बिहार किया। विहार बन्द करके प्रतिमाभोग धारण कर भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी के दिन सांय काल के समय मोक्ष को प्राप्त हुए। उस समय विशाखा नक्षत्र था। भगवान वासू पूज्य के साथ चौरानवे मुनियों ने भी मुक्ति प्राप्त की।

(१३)

अब पधारे विमलनाथ ।

देश का नाम रम्य कावती था उस नगर के राजा का नाम पद्म सेन था। सिर से लेकर ऐडी तक नीतिकार विद्या वीर और धीरोदत्त। समय के साथ राजा का यश, प्रताप सब कुछ था। मगर एक दिन उस राजा को इन सबसे वैराग्य हो गया। वह प्रति कर वन में केवल ज्ञानी सर्व गुप्त के संरक्षण में गये और उनसे अपना समस्त स्वरूप जानकर उन्हें प्रसन्नता हुई कि अब मुझे केवल दो भव और धारण करने हैं उन्होंने वहां ग्यारहअंगों का अध्ययन करके उन पर हृद प्रत्यप किया दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर प्रकृति का बंध सम्पन्न हुआ। और अन्य बहुत सी आराधनाओं को मुक्त करके बहुत सी अन्य पुज्य प्रकृतियों का भी यथा योग्य संचय करके सहस्त्रातु नामक स्वर्ग में इन्द्र का पद प्राप्त किया।

स्वर्ग के सुख भी चाहें कितने बड़े हो, कितने सुखद हो

आखिर उनका अन्त होता ही है। और मोक्ष पाने के लिये स्वर्ग से मनुष्य गति में आना आवश्यक है।

कम्पिला नगर के राजा कृत वर्मा की रानी जय श्यामा को ज्येष्ट कृष्णा दशमी के दिन रात के पिछले प्रहर में उत्तर भाद्रपद नक्षत्र में सोलह सपने देखे जो इस पृथ्वी पर तीर्थंकर के आने का संकेत होते हैं।

नौ माह बाद महारानी जय श्यामा ने माघ शुक्ला चतुर्दशी के दिन अहिर्बुध्न नक्षत्र में जिस पुत्र को जन्म दिया उसका अभिषेक सुमेरु पर्वत पर किया गया तथा विमल वाहन नाम रक्खा गया सोने के समान शरीर के स्वामी भगवान विमल वाहन का समय आने पर राज्याभिषेक हुआ और उसके बाद संसार से दुख मिट ही गया।

एक दिन—

हेमन्त की रितु थी।

प्रकृति, दिशा में भूमि, वृक्ष, वर्फ से ढके थे।

फिर निकली धूप।

वरफ पिघलने लगी।

और भगवान विमल वाहन को अनायास अपने पूर्वज याद आ गये। सोचने लगे कि इन तीन ज्ञानों से क्या होने वाला हैं क्योंकि इन सभी की सीमा हैं—इस सभी का विषय क्षेत्र परिमित है और इस वीर्य से भी क्या लाभ है जो कि परमोत्कृष्ट अवस्थाको प्राप्त नहीं है क्योंकि प्रत्याख्यान वरण कर्म का उदय है अतः उनको अपने चरित्र का घोधक नहीं है यह सोचकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि अब तक सर्प के शरीर अथवा फण के समान सयम इन भोगों को भोग कर भी वे लेश मात्र भी विचलित नहीं हो पाये हैं। उन्हें यह भी मालूम हुआ कि यह भोगों पभोग उनके पुण्य कर्मों का प्रताप जरूर है मगर जब यह समाप्त हो जायेगा

तो दुख शुरू हो जायेगा। इसलिये उन्हें वैराग्य हो गया। और वे देवदत्त नामक पालकी पर सवार होकर सहेतुक वन की ओर प्रस्थान कर गये।

सहेतुक वन में उन्होंने दो दिन के उपवास का नियम लिया और दीक्षित हो गये। वह शुभ वेला माघ शुक्ल की चतुरशी की संध्या थी उत्तर भाद्र पद नक्षत्र में उन्होंने दीक्षा ली और अगले दिन आहार के लिये नन्दनपुर नगर की ओर चल पड़े वहां के राजा कनक प्रभु ने आहार प्रदान करके पुण्य प्राप्त किया।

और इसके वाद—

सामयिक चरित्र धारण करके वे पावन मन से तपस्या में लीन हो गये तीन वर्ष की कठोर तपस्या के वाद भगवान-दीक्षा वन में दो दिन के लिये उपवास नियम के साथ जामुन वृक्ष के नीचे विराजमान हो गये।

माघ शुक्ल षष्टी के दिन सांय काल दीक्षा ग्रहण के नक्षत्र में घातियां कर्मो का नाश करके केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया।

केवल ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने निरन्तर विहार किया और सभी को यथा योग्य सच्चाई का रास्ता दिखलाया।

संसार में धर्म की रस धारा वहने लगी।

धर्म के अमृत से तृप्त प्राणी कर्मो के नाश के लिये कटिवद्ध हो गये।

आज भी आषाढ़ कृष्ण षष्टी को वड़े मनो योग से पूजा जाता हैं।

क्यों—

इस दिन भगवान विमल वाहन संसार के वंध से छुटकर प्रतिमायोग धारण किये हुए सम्मेद शिखर से मोक्ष गति को प्राप्त हो गये थे।

यह घड़ी उत्तर भाद्रपद के नक्षत्र की घड़ी थी जव भगवान ने

आषाढ़ कृष्ण षष्टी को पूजनीय बना दिया।

संसार विमल नाथ भगवान का सदैव कृतज्ञ रहेगा। क्योंकि उन्होंने विश्व को बताया कि हिंसा आदि पापों से परिणित हुआ यह जीव निरन्तर मलका संयम करता रहता है, और पुन्य के द्वारा भी इसी संसार में विद्यमान रहता है अतः उसे अपने गुणों को विशुद्ध बनाना चाहिये और पाप पुन्य के विकल्प से अलग २ रहना चाहिये।

(१४)

और फिर—

फिर आये भगवान अनन्त नाथ।

धात की खंड के पूर्व मेरू के उत्तर की ओर एक रमणीक राज्य था अरिष्ट, जहां का राजा पदम वास्तव में एक ऐसा राजा था। जिसके मानवीय और नीति की उन्नमता के कारण प्रजा उस पर वारी जाती थी। उसका पुन्य उदय एक दम वाधा रहित था। और वह निष्कटंक राज्य करता था। एक दिन वह स्वयं प्रभु जिनेन्द्र के समक्ष उपस्थित हुआ उनकी पावन उपासना वन्दना की और फिर उनका निर्मल धर्मोपदेश सुना।

उपदेश सुनकर सोचना शुरू किया।

जीवों का शरीर के साथ और इन्द्रियों का अपने विषय के साथ जो संयोग होता है वह अनित्य हैं क्योंकि जीव के शरीर आत्मा और इन्द्री और उसके विषय में एक का प्रभाव जरूर रहता हैं और इन विषयों में कोई भी व्यक्ति अपनी बुद्धि स्थिर नहीं रख सकता उसकी तो गिनती क्या है।

इन वातों से उसे वैराग्य हो गया। उसने अपने वेटे धनरथ को राज्य सौंप कर संयम धारण किया और समाधिमरण करके

बाद अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में इन्द्र पद प्राप्त किया। मगर स्वर्ग के सुख भी तो स्थाई नहीं होते। अतः मोक्ष प्राप्त करने के लिये हर एक जीव को मनुष्य की गति में आना ही पड़ता है।

अयोध्या नगरी के राजा सिंह सैन प्रतापी और मेघावी राजा थे उनके घर भगवान अनन्तनाथ को जन्म लेना था, अतः कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा के दिन रेवती नक्षत्र में महारानी ने सोलह सपने देखे थे और उन्हें देखने के नौ माह के अन्तर ज्येष्ट कृष्ण द्वादमी के पूर्व योग में उस मेधावी बालक ने जन्म लिया जिसका जन्म-मिषेक सुमेरू पर्वत पर किया पश्चात अनन्तनाथ नामकरण किया। अनन्तजीत भी उनका ही नाम है।

वक्त गुजरता गया। भगवान अनन्तनाथ सब प्रकार के सुखों में होते हुए यह सोचने में बाध्य हुए थे कि जिस प्रकार यह छारिणक है उसी प्रकार पुण्य कर्म बेल अज्ञान के बीज से पैदा हुई जो असंयमी रूपी पृथ्वी के द्वारा धारण की हुई है प्रमाद रूपी जल से सीची गई है। कयत्व इसकी सबसे बड़ी शाखा है जो योग्यों से आलम्बन बढ़ी हुई है, निर्भय गति के द्वारा फैली हुई है। वृद्वावस्था रुपी फूलों से ढकी हुई। अनेक रोग ही इसके पत्ते हैं और दुख रुपी दुष्ट फलों से झुक रहें हैं। क्यों न इस दुष्ट कर्म रुपी बेल को शुक्ल ध्यान की तलवार से न काट दु ं।

जब भगवान अनन्त नाथ ने यह सोचा तो उन्हें वैराग्य हो गया वे संसार से विरक्त हो गये थे। और सागरप्त नामक पालकी पर सवार होकर सहेतुक वन में जा पहुँचे और ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी के दिन दीक्षा के संरक्षण में आ गये।

मनः पर्यय ज्ञान अपने आप उमड आया।

सामयिक संयम के साथ साकेत पुर में जाकर विशाख राजा

के यहां आहार करके उसे पुन्यकृत किया।

तपश्चरण का समय आ गया।

दो साल तक एकांतवास और कठोर तपस्या।

और इसके बाद—

एक दिन।

वेला थी चैत कृष्णा अमावस्या की संध्या.

नक्षत्र रेवती।

भगवान अनन्तनाथ को केवल ज्ञान हो गया।

केवल ज्ञान का लाभ सिर्फ उन्हें नहीं मिला जो धर्म की निन्दा करते है। और पूरे समुदाय को मिला। सभी जीवों को लाभ मिला।

भगवान ने प्रकट किया पदार्थ कदाचित सद् रूप हैं और कथंचित असूद रूप है इस प्रकार निधि और निषेध पक्ष के सद्भाव को प्रकट करते हुए भगवान अनन्तनाथ ने जितने प्रसिद्ध देशों में बिहार कर भव्य जीवों को सम्मार्ग में लगाया।

अन्त में सम्मेद शिखर पर जाकर उन्होंने बिहार करना छोड़ दिया और एक माह का योग निरोध कर छः हजार एक सो मुनियों के साथ प्रतिमा योग धारण कर लिया।

और—

चैत कृष्ण चतुर्थी के दिन रात्रि के प्रथम भाग में चतुर्थ शुक्ल के ध्यान के द्वारा परम पद प्राप्त किया।

तब बहुत सी पुण्यात्माओ ने उनकी अन्ततेष्ठी सम्पन्न की।

(१५)

सुसीमा नाम का नगर, राजा दशरथ और उसके साथ बल बुद्धि बल और भाग्य जिसके कारण वह एक प्रतापी

राजा था, प्रजा की रक्षा करने में सदा उसकी इच्छा रहती थी और वह बन्धुओं तथा मित्रों के साथ निश्चित पूर्वक धर्म प्रधान सभी सुखों का उपयोग करता था। एक बार हुआ यह कि वैशाख शुक्ला पूर्णिमा का चन्द्र ग्रहण पड़ा। जिसे देखकर उक्त राजा ने सोचा—

चांद सुन्दर है।

नील कमलों को आन्दित करता है।

कलाओं से परिपूर्ण है।

फिर भी उसे ग्रहण ग्रस लेता है। तो मेरा क्या होगा?

वस उक्त राजा को वैराग्य हो गया।

राजा ने संयम धारण कर लिया।

अपना राज्य अपने सुपुत्र महारथ को देकर वह जिन देव क शरण में आ गया।

ग्यारह अंगों का अध्ययन करके सोलह कारण भावनाः का चिन्तन करने के कारण उन्हें तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हुआ

आयु के अन्त में समाधि मरण करके वे वुद्धि को निर्म करके सर्वाथि सिद्धो का अहमिन्द्र वने और वहां का सुख वैभ भोग कर संसार की ओर अग्रसर हुये।

उस समय रत्नपुर में कुरूवंशी महाप्रतापी महाराजा भ का राज्य था। उनकी महारानी सुप्रभा ने वैशाख शुक्ल अष्टम के दिन रेवती नक्षत्र में प्रातः काल के समय सोलह सपने दे जिनसे यह पुष्टि हो गई कि कोई तीर्थंकर जन्म ले रहा है।

माघ शुक्ला त्रयोदशी के दिन गुरुयोग अर्थात पूण्य नक्षत्र अंवधिज्ञानी रूपी नेत्रों के धारक पुत्र को उत्पन्न किया। और जब इस वालक का सुमेरू पर्वत पर अभिषेक किया गया तो उसका

नाम रखा गया : धर्मनाथ। उनके विषय में कहा गया है कि वे अत्यन्त ऊंचे, अत्यन्त शुद्ध, अत्यन्त दर्शनीय, उत्तम आश्रय दाता पक्के पालनहार और शरद् रितु के मेघ सरीखे थे। या वे किसी ऐसे हाथी की भांति जो भद्र जाति का होता है, बहुत मद से युक्त होगा। अच्छे अच्छे लक्षणों समेत अच्छे सामुद्रिक होते हैं।

वे सबकी, उनकी इच्छा के अनुसार पूर्ति करते थे और सब प्रा ढंग से पालन करने में कोई भूल चूक नहीं रहती थी।

सांसारिक कार्यों के समाप्त हो जाने पर एक दिन आकाश को देखकर उनका मन संताप से भर उठा। सोचने लगे—

मेरा यह शरीर कैसे, कहां और किससे उत्पन्न हुआ है? क्रियात्मक है, किसका पात्र है और आगे चलकर क्या होगा? यह विचार करके मैंने इसके साथ चिरकाल तक संगति की है। पाप का सयम करके दुख भोगना मेरा स्वभाव हो गया है। कर्म से प्रेरित होकर मुझ कुमति ने दुख को भी सुख समझा। कभी शाश्वत सुख की ओर नहीं बढ़ा। व्यर्थ ही एक भव से दूसरे भव की ओर अग्रसर होता गया।

यह सोचकर उन्होंने अपना समस्त राजपाठ अपने ज्येष्ठ पुत्र सुधर्म को सौंपकर नागकी पालकी में सवार होकर शालवन नामक उद्यान में जाकर दो दिन का उपवास का नियम लिया।

माघ शुक्ला त्रयोदशी। समय सांयकाल। नक्षत्र पुष्प।

यही बेला थी जब दीक्षा धारण की गई थी।

और दूसरे दिन—

पाटलीपुत्र नगरी में आहार लेने आ गये। वहां के शासक धन्यषेण ने उन्हें आहार देकर पुन्य प्राप्त किया।

तदनन्तर एक वर्ष का एकान्त वास करके उन्होंने सप्तच्छद वृक्ष के नीचे दो दिन के उपवास का व्रत लेकर योग धारण

किया और पौष शुक्ला पूर्णिमा के दिन सांयकाल पुष्य नक्षत्र में केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया।

केवल ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद सभायें आयोजित की गई और भगवान धर्मनाथ ने धर्म की अनेक जगह धर्म पताकायें फहराई और समुचे विश्व में धर्म की दुन्दभी बजा दी।

अन्त में विहार बन्द कर दिया गया।

आठ सौ मुनियों के समेत भगवान धर्मनाथ सम्मेद शिखर पर पहुंच गये। और एक माह तक योग निरोध करके ध्यानस्थ हो गये।

मास : ज्येष्ठ।

पक्ष : शुक्ल।

तिथि : चतुर्थी।

समय : रात्रि का अन्तिम प्रहर।

नक्षत्र : पुष्य।

उक्त वेला में भगवान धर्मनाथ का मोक्ष समागम सम्पन्न हुआ ?

(१६)

भगवान शान्तिनाथ। शान्तिनाथ भगवान ने जो मोक्ष मार्ग प्रचलित किया था वह आज भी उसी प्रकार अखन्ड रूप से चला आ रहा है। इसलिये यदि यह कहा जाय कि क्योंकि इनसे पूर्व के पन्द्रह तीर्थंकरों ने जो मोक्ष मार्ग चलाया था वह बीच–बीच में नष्ट होता रहा, मगर भगवान शान्तिनाथ ने जो मोक्ष मार्ग चलाया था वह आज भी कायम है। इसलिये यदि उन्हें इस युग का आद्य गुरू कहा जाये तो कोई अतियुक्ति न होगी।

भगवान शान्तिनाथ पदार्थो को यथार्त् स्वरूप में देखने वाले पहले विद्वान वक्ता थे। विद्वान होना, चरित्र धारण करना

दयालू होना, बुद्धिमान होना, बोलने में चतुर होना, दूसरों के इशारों को समझ लेना, प्रश्नों के उपद्रवों को सहन करना, अच्छा सुख होगा, लोक व्यवहार का ज्ञान होना, प्रसिद्धि एवं पूजा की उपेक्षा न करके कम बोलना, इत्यादि सभी गुण धर्मोपदेश के होते है, और भगवान शान्तिनाथ ने यह बात पूरे ढंग से, पूरे जोर से और शान्ति पूर्ण तरीकों से जनजन तक पहुंचाने का प्रयास किया था ।

अति सम्पन्न, समृद्ध एवं विशाल नगरी का नाम था रघनूपुर चक्रवाल । वहां धर्म, अर्थ, और काम तीनों ही बढ़ रहे थे । विकसित हो रहे थे । उस नगरी का राजा था ज्वलन जरी । उसी मे कुछ दूर पर एक और नगर था जिसका नाम धुतिलक । इसका राजा था चन्द्रास और रानी थी सुभद्रा । उन दोनों को एक कन्या थी नाम था वायु वेगा । वह बहुत ही मेधावी, प्रतापी और यशस्वी कन्या थी । यह कन्या ज्वलनजरी की प्रेरणा का स्त्रोत थी । दोनों एक दूसरे को प्यार करते थे । जब उन-दोनों का विवाह हो गया तो उन्होंने जिस सुन्दर बालक को जन्म दिया उसका नाम रखा गया अर्ककीर्ति । अर्ककीर्ति बहुत ही सुन्दर और मेधावी बच्चा था, जो एक सुन्दर, सुशील कुमार के रूप में संसार को चकित कर रहा था । उनके एक कन्या भी थी जिसका नाम स्वयंप्रभा था ।

एक दिन वय पाल ने सूचना दी कि दो चारण रिद्धिधारी मुनि जगनन्दन और अभिनन्दन पधारे हैं । राजा ने यह समाचार सुनकर अपार हर्ष मनाया । और उनके धर्मोपदेश से अपने मन को पवित्र किया । मगर स्वयं प्रभा ने जब यह निर्मल उपदेश सुना तो वह संयमित हो उठी । अब वह जिनेन्द्र देव की पूजा करने लगी ।

वह नित्य ही उपवास आदि किया करती थी । राजा ने

देखा वह उपवास आदि के कारण कुछ म्यान हो गई थी। जिस कारण राजा ने सोचा कि क्यों न इसकी शादी कर दी जाये। और मन्त्री ने राजा की इच्छा समझ कर उसने सुरेन्द्रकान्ता नगर के राजा मेघवाहन के सुपुत्र विद्युत प्रभु के विषय में बतलाना शुरु किया जो पूर्व जन्म विजयभद्र नाम का प्रभाकरी नाम की नगरी का राजा था और पेड़ से गिरते फलों के बाद फलहीन वृक्ष को देखकर संसार से वैराग्य धारण करके स्वर्ग चला गया था और अब विद्युतप्रभ नाम का सुन्दर राजकुमार को ही यह कन्या वरी जानी चाहिये। मगर अन्य मन्त्रियों का मत था कि इस प्रकार अन्य राजाओं से वैर हो सकता है अतः स्वयंम्बर होना चाहिये।

राजा ने यह विवाद देखकर मन्त्रियों की सभा को स्थगित करके निमित्तज्ञानी से उक्त कन्या का भावी पति जानने की इच्छा प्रकट की। निमित्त ज्ञानी ने बतलाया कि पुष्कलावती नामक देश की पुण्डरींकिणी नगरी में मधु नामक वन में एक भीलों का राजा रहा करता था। एक दिन राह भूलकर वह मुनिराज सागर सैर के संरक्षण में चला गया। जहा जाकर उसने सुरा, मांस और मधु को त्याग कर दिया। वही अब प्रजापति के पुत्र के रूप में आ गया है। आपकी यह कन्या उसी के अनुरूप है। अतः आप पोदनपुर के त्रिपृष्ट को अपनी कन्या सोंप दो।

बस वह कन्या त्रिपृष्ठ को सौंप दी।

इस बात का विरोध अन्य लोगों ने किया।

त्रिपृष्ठ ने अपने ससुर आदि का पक्ष लिया और शत्रुओं को हटा दिया। जब ज्वलनवदी ने यह समाचार सुना तो उसे वैराग्य हो गया। उसने अपना समस्त राज वैभव अपने पुत्र अर्क कीर्ति को सौंपकर मुनि के समीप जाकर दिगम्बर दीक्षा ग्रहण कर ली और इन गुणों को प्राप्त किया:—

—याचना न करना

—बिना दिये कुछ ग्रहण न करना

—सरलता रखना

—त्याग करना

—किसी चीज की इच्छा न करना

—क्रोध आदि का त्याग करना

—उपवास आदि कर अभ्यास करना

—तप करना

उधर त्रिपृष्ठ भी सभी प्रकार के वैभव भोगता, हुआ नरक-गामी हुआ। मगर विजयवलभद्र ने अपने पुत्र विजय भद्र को युवराज का पद देकर सुवर्ण कुम्भ नामक मुनिराज के निकट जाकर दीक्षा ले ली। और केवल ज्ञान को प्राप्त किया। जब यह समाचार अर्क कीर्ति ने सुना तो वह भी राजपाट छोड़कर विपुल मति मुनि के संरक्षण में जाकर दीक्षित हो गये और स्वर्ग के अधिकारी हुये।

हमने भगवान शान्तिनाथ के जीवन का कुछ पावन चरित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करते हुये कहा था, भगवान शान्तिनाथ आज के आद्य गुरू हैं, जो संसार को इस युग तक धर्म का मार्ग प्रदर्शित करते आ रहे हैं। सोलहवें प्रातः स्मरणीय तीर्थंकर भगवान शान्तिनाथ का अन्तिम भव का वर्णन उत्तर पुराण में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

कुरू जांगल देश में गजपुर नाम की नगरी थी उसका राजा असितसेन था, जिसके प्रिय दशर्नी नाम की रानी ने विश्वसेन नामक पुत्र को जन्म दिया। जो बड़ा होकर ऐस नाम की राज-कुमारी से व्याह किया जो गांधार देश के अजितन्जय राजा और रानी अजिता की प्रिय पुत्री थी।

भादो बदी सप्तमी के दिन भरणी नक्षत्र में रानी ने सोलह सपने देखे जो अर्कंन तीर्थंकर की सूचना थे।

नौ माह बाद—

शंखनाद, भेरी, नाद, सिंह नाद, और घटानाद, से भगवान तीर्थंकरों के आगमन की सूचना दी गई।

यह शुभ दिन था ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी। ग्राम्य लोग। समय प्रातः काल।

और सुमेरू पर्वत पर अभिषेक करके शान्तिनाथ नाम रखा गया। सुवर्ण के समान शांति वाला रंग, भवरों के समान, कोमल पतले, चिकने काले और घुंघर वाले शुभ बाल, मेरू पर्वत के शिखर के समान उनका सिर, कुटिल भवें, सफेद चिकने एवं सघन बराबर के दांत, घुटनों तक लम्बी भुजायें, चौड़ा वक्षस्थल और गम्भीर नाभि।

ससार का समान ऐश्वर्य प्रभू शान्तिनाथ के चरणों पर लौट रहा था। समयानुसार उन्हें निम्न चौदह रत्न प्राप्त हुये थे—

(१) चक्र	(८) पुरोहित
(२) छत्र	(९) ख्याति
(३) तलवार	(१०) सेनापति
(४) दण्ड	(११) ग्रहपति
(५) कारिणी	(१२) कल
(६) चर्म	(१२) गज
(७) चूड़ामणी	(१२) अश्व

एक दिन भगवान शान्तिनाथ आभूषण में थे कि उन्हें दर्पण में दो प्रतिविम्ब दिखलाई पड़े।

और इसके साथ ही उनके मतिज्ञान का क्षय हो गया।

उन्हें वैराग्य हो गया।

सोचने लगे—'सब सम्पदायें मेघों की छांह जैसी है, लक्ष्मी बिजली की चमक जैसी है। शरीर माया मयी है और आयु क्या है। सुबह की छांह जैसी जो निरन्तर घटती ही जाती है।

संयोग वियोग एक है।

वद्धि हानि एक हैं।

जन्म और पहले जन्म में कोई अन्तर नहीं है।

तो फिर इस जीवन का क्या ?

वे विरक्त हो उठे।

उन्होंने अपने मन की आवाज को अन्तर की वाणी को सुना और अपने सुपुत्र नरायण को राज्य पाठ सौंप कर स्वार्थ सिद्धि नाम की पालकी में बैठकर सहस्त्रारबन में सुन्दर शिला पर आसीन हो गये। उनका मुख उत्तर की ओर था और वे पदमासन से विराजमान थे।

ज्येष्ठ कृष्ण चतुदर्शी। समय सायं। नक्षत्र भरणी।

वेला का नियम लेकर बैठ गये।

सिद्ध भगवान को नमस्कार करके उन्होंने वस्त्र आदि के समस्त उपकरण छोड़ दिये। पांच मुट्ठियों में अपने लम्बे केशों का लोच कर दिया और यथाशीघ्र सामायिक चरित्र सम्बन्धी विशुद्धता प्राप्त करके मनपर्वय ज्ञान को प्राप्त हुये।

भगवान शान्तिनाथ ने आहार की इच्छा से मंदिरपुर के सुमित्र राजा को उपकृत किया।

मोह को विजय किया।

कषाओं को कृश कर डाला।

और—पौष शुक्ल दशमी के दिन सायंकाल वे पुनः पदमासन से विराजमान थे। उनके ऊपर बन्धावई वृक्ष की छांह थी। उनका मुंह पूर्व की ओर था। इसके अतिरिक्त निम्न विशेषतायें थी :—

(क) विर्ग्रन्यता : मोहनीय कर्म के भय हो जाने से ।

(ख) इन करणों के क्षमक श्रेणी के बीच विराजमान थे—

—अध: करण

—अपूर्व करण

—अनिकृति करण

(ग) सूक्षम साम्प्रदाग नामक चतुर्थ चरित्ररथ उनके नीचे था ।

(घ) मोह विजयी

(च) वीतरागी

(छ) नीरज : क्योंकि ज्ञानावरण, और दर्शनावरण, मोहनीय नामक कर्म समाप्त हो चुके थे ।

(ज) वीत बिघ्र —अन्तराय कर्म के क्षय के कारण ।

(झ) केवल ज्ञानी ।

भगवान के समवशरण की शोभा भी अनुपम थी । सब उनके उपदेश के अमृत से तृप्त होते जान पड़ते थे ।

प्राणी मात्र कल्याण का अभियान चलता रहा । और फिर एक दिन भगवान ने विहार बन्द कर दिया ।

सम्मेद शिखर पर आकर अचल योग धारण कर लिया ।

यह शुभ वेला थी ज्येष्ठ मास कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि का पूर्व भाग । भरणी नक्षत्र में भगवान को मोक्ष प्राप्त हुआ ।

भगवान शान्तिनाथ के भव इस प्रकार हैं—

☐ राजा श्रीषेण

— देव

☐ बलभद्र

— देव

☐ वज्रायुध

— अहमिन्द्र

☐ मेघरथ : सर्वार्थ-सिद्धि द्वारा पूजित

— देव

☐ भगवान शान्तिनाथ

(१७

नगर का नाम वत्स। अंचल का सुसीमा, राजा सिंह रथ और धनी धर्म रथ प्रजा, का अभुदय उस समय हुआ जब सिंहरथ ने उल्कापात देखकर पतिकृषभ नामक मुनिराज से धर्म तत्व सुना और वैराग्य धारण करके अपना राज्य भार पुत्र को दे संयम से अन्य राजाओं समेत ग्यारह अंगों का ध्यान प्राप्त किया और अन्त में समाधिमरण के उपरान्त अंतिम अनुत्तर विमान में नव ग्रीवल उत्पन्न हुआ।

वहां के सुख भोग कर उसकी दृष्टि गजपुर पर पड़ी।

महाराजा सूरसेन यहां के राजा थे और उनकी पटरानी का नाम था श्रीकांता।

श्रावण कृष्ण दशमी के दिन महारानी को सोलह सपने दिखलाई पड़े। और तदनन्तर वैशाख शुक्ला प्रतिपदा को आग्नेय योग में उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया। जिसका सुमेरू पर्वत पर अभिषेक करके नाम रक्खा गया 'कुन्थनाथ'। तपाये हुये सोने की कांति वाला शरीर के कुमार कुन्थनाथ जब कुमार अवस्था को पार कर चुके थे तो एक बार वन से लौटते हुये किसी मुनि को आतम योग से स्थित देखकर वे संसार से विरक्त हो गये। अपना समस्त राज्य भार पुत्र को देकर वे विजय नाम की पालकी में सवार होकर सहेतुक वन में पधारे।

बेला का नियम लिया और वैशाख शुक्ला प्रतिपदा को कृतिका नक्षत्र में एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गये।

अगले दिन—

हस्तिनापुर (गजपुर) के राजा धर्ममित्र ने उन्हें आहारदान देकर पुन्य को प्राप्त किया।

सोलह साल तक वे निरन्तर घोर तप करते रहे।

और फिर एक दिन—

तिलक वृक्ष के नीचे वेला का नियम लेकर फिर आसीन हो गये।

तिथि : चैत शुक्ला तृतीय।

नक्षत्र : मृतिका।

समय : सांय काल।

भगवान कुन्थ नाथ को केवल ज्ञान हो गया। जिसके तुरन्त बाद ही उन्होंने फिर जनकल्याण के लिये विहार शुरू कर दिया।

जनगण में शांति और तपनिष्ठा आलोक का प्रकाश करते हुए अन्त में वे सम्मेद शिखर पर जा पहुँचे और प्रतिमायोग में विराजमान हो गये।

शुभ तिथि : वैशाख शुक्ल प्रतिपदा रात्रि के पिछले भाग में कार्तिका नक्षत्र में समस्त कर्मों को समाप्त करके परम पद (मोक्ष) प्राप्त किया।

इनके पिछले भव इस प्रकार थे—

१—सिंह रथ

२—स्वार्थ सिद्धि के देव

३—श्री कुन्थ नाथ भगवान

(१८)

अठारहवे तीर्थंकर भगवान अरहनाथ? कभी सेमपुर के राजा वनपति के समय से प्रजा को सुख पहुँचाने में सदा प्रयत्नशील रहते थे। समस्त संसार का वैभव जब उनके चरणों में था

तो वे इस संसार से विरक्त हो गये और परिवारादि से दीक्षित होकर ग्यारह अंगों और सोलह कारण भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर बन्ध हो जाने के कारण समाधिमरण के बाद स्वर्ग में अहमिन्द्र हुये और स्वर्ग के समस्त सुखों को भोग कर इस संसार के भव भय से परक लिये पुनः मनुष्य की योनी में आना पड़ा।

हस्तिनापुर के सोमवंशीय राजा सुदर्शन की रानी मित्र सेना को रेवती नक्षत्र में फाल्गुन शुक्ल की तृतीय को सभी सोलह सपने दिखलाई पड़े। जिनसे स्पष्ट हो गया कि जो बालक अब गर्भ में आ रहा है। वह आठ कर्मों को नाश करने वाला होगा और तीर्थंकर बनेगा।

मार्ग शीर्ष के शुक्ल की चतुर्दशी।

नक्षत्र पुष्य।

मित्र सेना नें जिस सुन्दर, स्वर्ग के समान क्रांति वाले बालक को जन्म दिया उसका नाम अरहनाथ रक्खा गया।

बड़े होकर उस बालक ने चक्रवर्तिपद एवं अपार वैभव प्राप्त किया।

एक शरद कालीन प्रभात को अचानक बादलों के विक्षप हो जाने के कारण वे इस संसार से विरक्त हो गये और वैजयंती पालकी पर सवार होकर सुरकेतु वन की ओर चले गये। वहां बेला नियम लेकर मार्ग शीर्ष के शुक्ल पक्ष की दशमी को रेवती नक्षत्र में दीक्षा धारण करके चार ज्ञान के धारी हो गये।

पारणा करते हुये उन्होंने चक्रपुर नगर के राजा अपराजित से आहार दान लेकर एकान्तवास के सोलह वर्ष व्यतीत किये।

घोर तप—

घातियां कर्मों का विनाश।

और फिर अरहन्त (केवल ज्ञान) की प्राप्ति।

कार्तिक शुक्ला द्वादशी के रेवती नक्षत्र में सांयकाल ग्राम के पेड़ के नीचे उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया।

केवल ज्ञान को अपने तक सीमित न रखकर भगवान अरहनाथ ने अनेक देशों में धर्मोपदेश दिया।

प्राणी मात्र को सुख का आभास दिया।

सभ्य सुख।

और इसके बाद बारी आई सम्मेद शिखर पर जाने की। विहार बन्द करके वे सम्मेद शिखर पर प्रतिमा योग धारण किया। और चैत शुक्ल एकादशी को महा निर्वाण पद प्राप्त कर लिया।

क्षुध्या तृषा और भय के अट्ठारह दोषों से रहित अठारहवें तीर्थंकर के कुछ भव इस प्रकार थे—

× धनपति नाम का राजा।

× स्वर्ग के अग्र भाग में शोभित जयंत नामक विमान के स्वामी।

× सुखी अहमिन्द्र

× नव खडों के स्वामी चौदह रत्नों और नौ निधियों के अधिपति चक्रवृति।

और अन्तत: अरहंनाथ।

(१६)

उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान मल्लीनाथ।

जैन शास्त्रों का यह मत है कि जिस प्रकार शेर हाथी पर विजय पाता है उसी प्रकार भगवान मल्लीनाथ ने मोहरूपी सेना को जीत लिया था।

कहते हैं कि कच्छ कावती के बीच शोक नगर में वैश्रवण नाम का प्रजाहित चिन्तक राजा एक बार जंगल से गुजर रहा था। कि उसकी नजर उस विमाल वट वृक्ष पर पड़ी जो उससे बड़ा दिखलाई देता था। मगर जब लौट कर आया तो वह

विशाल वट वृक्ष पृथ्वी पर धराशायी पड़ा था।

जब इस विशाल बट वृक्ष को नष्ट होने में एक क्षण नहीं लगा तो मनुष्य किस गिनती में है।

वह क्यों मान करता हैं ?

क्यों सुख और दुख अनुभव करता है।

संसार में किसकी जड़े मजबूत हैं, कौन ऊंचा है, कौन विराट है। केवल ज्ञान ही ऐसा है जो इस विशाल वट वृक्ष की भांति अहंकार में डूबे मनुष्य को राह दिखा सकता है।

उसी राह में राजा ने चलने का फैसला किया और राजपाट पुत्र को सौंप कर श्री नाग नामक मुनिराज से दीक्षित हो गया।

सोलह कारण भावनाये चिंतन करके, परिग्रह को त्याग कर समाधिमरण करके अनुत्तर स्वर्ग के अपराजित विमान में देव पद प्राप्त किया। जब इस देवगति की अवधि समाप्त हुई तो मिथिला नगर के राजा कुभं की रानी प्रजावती को सोलह तीर्थंकर सम्बन्धी स्वप्न चैत्र, शक्ल प्रतिपदा के दिन, रात्रि के अंतिम प्रहर में दिखलाई दिये।

मार्ग शीर्ष की शुक्ल पक्ष की एकादशी को रानी प्रजावती ने जिस बालक को जन्म दिया वह अश्विन नक्षत्र में उत्पन्न हुये थे। नामाभिषेक में इस बालक का नाम मल्लिनाथ नाम रखा गया और जब कुमार मल्लिनाथ का विवाह सम्पन्न करने के लिये नगर को सजाने की व्यवस्था की गई तो अनायास ही नगर की शोभा देखकर उन्हें पूर्वजन्म के सुन्दर विमान अपराजित का ख्याल आ गया।

'कहां यह, कहां वह !

कैसी विडम्बना है यह !!

साधारण पामर मनुष्य शादी को प्रारम्भ कहते हैं, मगर बुद्धिमान...अनायास ही उनका मन विराग से भर गया।

(१६)

संसार से विरक्त होकर उन्होंने दीक्षा लेने का निश्चय किया। वे जयंत नामक पालकी में बैठकर श्वेत वन की ओर चल पड़े जहां उनका दीक्षा कल्याण समारोह सम्पन्न हुआ। अगहन शुदी एकादशी के अश्विनी नक्षत्र में यह कार्य सम्पन्न हुआ।

सम्यकता की प्रेरणा से पारणा के लिये मिथिला में पधारे जहां नन्दीषेण राजा ने आहार दान देकर पुण्य लाभ प्राप्त किया।

छः दिन का एकान्त वास भी बीत गया।

अब वे अशोक वृक्ष के नीचे विराजमान थे। दो दिन का उपवास का नियम लेकर जैसे भगवान मल्लिनाथ को केवल ज्ञान, प्राप्त हुआ और अपार समवशरण से कल्याण करके फाल्गुन शुक्ला पंचमी के भरणि नक्षत्र में मोक्ष को प्राप्त हुये।

(२०)

बीसवें तीर्थं कर।

भगवान मुनिसुव्रत नाथ जी।

इनका पहला भव चम्पापुर नामक नगर के राजा हरिवर्मा के रूप में प्रजा का पालन करके ख्याति अर्जित कर रहे थे कि उनके उद्यान में अनन्त वीर्य नामक निग्रन्थ मुनिराज पधारे और उनके निर्मल धर्मोदेश से प्रभावित होकर हरिवर्मा विरक्त हो गये।

मुनिराज ने बतलाया कि जीव दो प्रकार का होता है, एक संसारी दूसरा मुक्त।

जो जीव आठ कर्मों से सम्बद्ध है उसे सांसारी कहते हैं। इन्हें चार प्रकार के बंध होते हैं और मुक्त जीव इनसे बिल्कुल परे रहता है।

राजा हरिवर्मा विरक्त हुए।

राजपाट उनके पुत्र ने सम्हाला।

गुरु के समागम से उन्होंने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और इस प्रकार वे तीर्थंकर गोत्र का बन्ध पा गये।

चिर काल तक तप करने के बाद वे समाधि धारण करके स्वर्ग में आसीन हुए।

मगर स्वर्ग से सीधा कोई व्यक्ति मोक्ष नहीं पा सकता, इस लिये मनुष्य गति संघर्ष मय गति होने के कारण सर्वोत्तम गति मानी जाती हैं। उसी गति में आने के कारण राजग्रह नामक नगर में सुमित्र नामक राजा की रानी सोमा ने वे सोलह सपने देखें जो स्पष्ट रूप से किसी तीर्थंकर के जन्म की सूचना देते है। इससे निश्चित रूप से सभी जगह आनन्द की लहर दौड़ गई। श्रावण कृष्णा द्वितीया के दिन जब जंगल में मोर नाच रहे थे। नर नारी आनन्दित थे तो रानी सोमा ने सुमित्र को अपने सपने सुनाये।

राजा ने जब सपने का भाव समझाया तो रानी का मुख कमल खिल गया। मां के लिये इससे बड़ा सुख क्या हो सकता है कि उसकी कोख से उत्पन्न बालक तीर्थंकर बने आनन्द के ये पल इतने अधिक थे कि कब नौ माह बीत गये कुछ पता ही न चला यथा समय बालक ने जन्म लिया। मोर के गले जैसी नीली कांति से आभूषित इस बालक का नाम जन्माभिषेक के बाद सुव्रत नाम रखा गया।

सब कुछ यथा संभव सुख पूर्ण बीत रहा था एक दिन सुव्रत नाथ के हाथी ने खाना छोड़ दिया तब बादल गरज उठे बिजली तड़क उठी।

और सुव्रत नाथ को याद आ रहा था कि यह हाथी पूर्व काल में नरपति नामक एक राजा था। मगर यह अपने परिवार और

अन्य वंश पर अति दुख मानकर कलुषित वेशाओं से घिरा रहता था क्योंकि वह सदैव मिथ्याज्ञान से प्रभावित रहता था इस कारण इस जन्म में हाथी बन गया ।

जब उन्होंने यह सब हाथी को सुनाया तो उसे पुराने भव सब याद आ गये पर अब अधिक दुख नहीं सहना चाहता था। इस कारण उसमें संयम पैदा हो गया जब एक हाथी को संयम हो सकता हैं तो पुरूष का तो कर्म ही संयम होता हैं। बस इसी कारण सुव्रतनाथ को वैराग्य हो गया।

उन्होंने अपने युवराज विजय को राजपाठ सौंप दिया और अपराजित नामक विशाल पालकी पर सवार होकर नील बन में जा पहुँचे और वैशाख कृष्ण दशमी के दिन श्रवण नक्षत्र में सांय काल को उन्होंने वेला का नियम ले लिया।

दीक्षा धारण करते हुए उन्हें मन पर्य्य ज्ञान हो गया।

वे पारणा के समय राज ग्रह नगर में पधारे और वहां के शासक वृषभ सैन ने उन्हें आहार दान देकर पुन्य प्राप्त किया ग्यारह माह तक एकान्त वास के बाद वे पुनः दीक्षा वन में जा पहुंचे और वैसाख कृष्ण नवमी के दिन श्रवण नक्षत्र में चम्पक वृक्ष के नीचे केवल ज्ञान प्राप्त किया।

केवल ज्ञान के बाद इन्होंने ज्ञान कल्याण का उत्थान और मानस्ते भरी रचना की तथा रिद्धियो और सिद्धियों के साथ फिर विश्व कल्याण के लिये समय शरण का निधान किया। और इसके बाद ज्ञान कल्याण की भावना से प्रेरित होकर वे संसार को ज्ञान सुख देते रहे और अन्त में सम्मेद शिखर पर जाकर एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमा योग धारण कर लिया !

फिर आई वेला—

महा निर्वाण की—

मास : फाल्गुन—पक्ष कृष्ण तिथी द्वादशी, समय : रात्रि का पिछला पहर।

इक्कीवे तीर्थंकर ।

भगवान नेमीनाथ के विषय में प्रचलित है कि उनका नाम लेने से ही मुक्ति संभव है। ऐसे भगवान नमी को नमस्कार करते हुए शास्त्र कारों ने कहा हैं कि भगवान भी मुक्ति देने में समर्थ है और उन्होंने सभी प्राणियों के लिये मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

उनके समो शरण में सत्रह गन धर थे चार सौ पचास समस्त पूर्वो के जानकार थे बारह हजार छै सौ सभी अच्छे वृतों को धारण करने वाले प्रशिक्षक थे एक हजार छै सौ अवधि ज्ञान के धारक थे और इतने ही अन्य केवल ज्ञानी थे। इस प्रकार उनके समव-शरण में बीस हजार से अधिक मुनि थे। इसके अतिरिक्त-

आर्पकायें पैंतालिस हजार

श्रावक एक लाख

श्रावकियें तीन लाख

देव देवियां असंख्यात

त्रियन्च गति के जीव असंख्यात

उनकी वदना करते हुए कहा गया है:—

'जय जय नमि दमि दरिद्र रोन···'

(संदर्भ, मनीराम, मनराम तिलाम से उद्धत)

भगवान नेमिनाथ प्रथम भव में कौशाम्बी के राजा सिद्धार्थ के नाम से अवतरित हुए थे, जिनके पिता का नाम पार्थिक और मां का नाम सुन्दरी थी। अपने इस भव में भगवान नेमिनाथ चक्रवृति सम्राट की पदवी से आभूषित थे। एक दिन राजा पार्थिक मुनिवर नामक मुनि के निर्मल धर्मोपदेश से सहमित होकर सोचने लगे कि संसार में प्राणी मरण रूपी मूलधन लेकर मृत्यु का कर्ज-

दार हो रहा है। हर जन्म में अनेक दुखों को भोगता है और और अपने कर्ज की वृद्धि करता है। एक के बाद एक कई गतियों में दुख भोगता मौत के कर्ज से सौदागर से मुक्ति नहीं पा सकता।

इन विचारों से उदासीन होकर राजा पार्थिक ने सन्यास ले लिया और उनका युग सिद्धार्थ अणु व्रत आदि व्रत धारण करके भोग भोगता हुआ राज्य करने लगा मगर जिस दिन सिद्धार्थ ने सुना कि उनके पिता ने समाधि मरण ले लिया है, उसी दिन से उन्हे वैराग्य हो गया और उन्होंने महाबली नामक के वली से अपने आपको दीक्षा संरक्षण के लिये सौंप दिया। उन्होंने अपने पुत्र श्रीदत्त को राजपाट सौंपकर ग्यारह अंगों का सार्थक रूप से अध्ययन किया। इस कारण उन्हें तीर्थंकर मार्ग का बंध हुआ और समाधिमरण के बाद अपराजित नाम के श्रेष्ठ अनुत्तर विमान में अतिशय शोभायमान देव बने।

मगर जैसा कि आपको मालूम है कि मोक्ष के लिये देवगति नहीं मनुष्य गति की आवश्यकता होती है। अतः देवगति की अवधि समाप्त होने के बाद उन्हें ससार में आना ही पड़ा। विचिला के राजा विजय महाराज की महारानी वधिला को अश्विन कृष्णा द्वितीय के दिन आश्विनी नक्षत्र में भगवान तीर्थंकर के सोलह सपने दिखलाई पड़े।

इसके तुरन्त बाद, नौ माह के अन्तर विचला देवी ने आषाढ़ कृष्णा दशमी के दिन जिस बालक को जन्म दिया उसका जन्म कल्याणक उत्सव मना कर उनका नामकरण नेमीनाथ के रूप में लिया गया।

भगवान नेमीनाथ का रंग स्वर्ण के समान था और उनकी आयु के साथ निरन्तर वृद्धि हो रही थी।

एक बार जब वे वन विहार करके लौट रहे थे तो उन्होंने आकाश मार्ग से आते हुए दो देवकुमारों को देखा।

उन देवकुमारों ने उनकी वन्दना की।

संघ ही प्रार्थना की कि पूर्व के विदेह क्षेत्र में वत्सकावती नामक देश है, जिसमें सुशीला नगर विख्यात है। वहां अपराजित विमान से चल कर एक अपराजित नाम के केवली भी हुये है। जिनकी पूजा के लिये कई इन्द्रादि आये हुये हैं। उनकी सभा में यह प्रश्न हुआ है कि इस समय भरत क्षेत्र में भी उक्त तीर्थंकर हैं। और उन्होंने आपका नामादि दिया है।

इस प्रकार भगवान नेमिनाथ को अपने भवों का स्मरण हो आया और कहते हैं कि जिस प्रकार खम्भे से बंधा हुआ हाथी अपने को धिक्कारता है उसी प्रकार उनकी आत्मा उन्हें निरन्तर कचोटती रही।

अन्तत: उन्होंने संसार से वैराग्य ले लिया। और अपना सब वैभव छोड़कर उत्तर मुखनाम की मनोहर पालकी को देवो ने सजाया और उसमें नेमिनाथ सवार होकर चेतवन नामक उद्यान की ओर गये।

आषाढ़ कृष्ण दशमी के दिन उन्होंने अभूति नक्षत्र में बेला का नियम लिया और अपने साथ एक हजार राजाओं को दीक्षित करके पारणा के लिये वीरपुर नामक नगर में गये, जहां के राजा दत्त ने उन्हें आहार दान देकर पुण्य अर्जित किया।

नो साल के एकान्त वास के वाद नकुल वृक्ष के नीचे बैठकर मार्ग शीर्ष की शुक्ल पक्ष वाली एकादशी को केवल ज्ञान प्राप्त किया। जब से सम्मेद शिखर जाने तक वे मानव जाति का नहीं प्राणी मात्र का कल्याण करते रहे।

उन्होंने वैशाख कृष्ण चतुर्दशी के दिन रात्रि के अन्तिम समय में अभूति नक्षत्र में मोक्ष प्राप्त किया।

(२२)

उपरोक्त वर्णन हमने उत्तर पुराण के कुछ खण्डों से लिया है। इन तीर्थंकरों के विषय में और भी कथा, उपकथा, और प्रमाणिक सामग्री उपलब्ध है, मगर उपरोक्त सामग्री आचार्य गुण संस्कृत उत्तर पुराण से संकलित है जिसका भाष्य पं० पन्ना।

जन ने किया था, उनका आभार प्रकट करते हुये जी निष्कर्ष हम चाहते थे वह यह है कि भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा उन चौबीस तीर्थंकरों की परम्परा है, जिसमें उन्हें विरासत में उन सभी तीर्थंकरों का निर्मल आदेश मिला था, उनकी गतिविधि मिली थी। हो सकता है एक सी भावना होने पर हमने कुछ तीर्थंकरों का चरित्र सुक्ष्म रूप से अथवा लगभग शून्य के प्रस्तुत किया हो। इसका कारण यह नहीं है कि वह किसी से कम थे। अपितु हमारा विषय भगवान पाश्वनाथ के चरित्र की पावनता का प्रस्तुत करना था, जिसमें अतिशय गौरव का अंकन होना आवश्यक है।

इस क्रम के सबसे यशस्वी तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ का उल्लेख करना अभी शेष है।

भगवान नेमिनाथ।

मोक्ष लक्ष्मी के दाता भगवान नेमिनाथ इस क्रम के बाईसवे तीर्थंकर हैं, जिन्होंने विश्व को मोक्ष का मार्ग दिखलाते हुए विश्व का प्रथम प्रदर्शन किया था उनके विषय में अनेक भक्ति गीतों में से एक का रसास्वादन करिये।

शिवरमणी जादू डारो
वैरागी भये प्रभू म्हारो।
तोरणतै रथ फेर दियो प्रभु
पशुफन्द निखारो ॥ शिवरमण०॥
अफुवादि भावन भावत
लोकोतिक भुश्रम उचारो।
भूषण वषन अरि गिरि ऊचर
पंच महाव्रत धारी ॥ शिवर मणी०॥
पंच समिति त्रय गुप्ति सहित जु
सुख वारिधि विस्तारो।
निजानंद अनुभव कसमें

छकि मयो जगनै धारो ।। शिवरमणी०।।
काज होय उनके ढिंग सजनी
उन विन कोउ न हमारो ।
मानिक जग असार लखिकरि
रजमति शरण विचारो ।। शिवरमणी० ।।

(संदर्भ : मानिक चन्द, पदसंग्रह)

भगवान नेमिनाथ नारायण श्री कृष्ण के समकालीन थे। उनकी वन्दना करते हुए कवि ने कहा कि राजमति का कथन है कि हमारे प्रभु ने शिखर पर शिवरमणी ने जादू कर डाला है इस कारण वे वैरागी हो गये।

प्रभु व्याह करने आये थे, किन्तु इस जादू के कारण ही उन्होंने वन्दनवार विवाह द्वार से अपने रथ को फेर लिया है और भोजनार्थ करने के लिये जो पशुवंद थे उनके बन्दन खुलवा दिये हैं।

प्रभु ने वस्त्र फैंक दिये।

आभूषण उतार दिये।

और गिरनार पर्वत पर जाकर पंच महान धारण कर लिये।

उन्होंने पंच समिति और तीन गुप्तियों को लेकर अपने मुखरूपी समुद्र का विस्तार किया है।

अपने स्वयं से छक कर वे सारे संसार से न्यारे हो गये हैं !

भगवान नेमिनाथ की सबसे बड़ी उपलब्धि थी और वह जो जीवों के प्रतिदया

हिंसा त्याग्य है, इसको लेकर ही उन्होंने अपने आपको समर्पित कर डाला। और यही उनके वैराग्य का कारण बना।

भगवान महावीर और पार्श्वनाथ भगवान के ये ही सबसे बड़े साधन बने ! जीवों पर दया, चर अचर पर दया और सबको जीने का अधिकार वह स्वर है जो आज भी भारत की

बाणी को मुखातिब कर रहा है।

इतिहास सदैव उनका रिणी भी रहता है, वो औरों का इतिहास बनाने में सहायता देते है प्रेरणा देता है।

और हमारी नई पीढ़ी उन सभी तीर्थंकर के प्रति अनुग्रहित हैं। जिन्होंने विश्व के प्राणी, चाहे वे किसी जाति के क्यों न हों जिन्हें जीव में कल्याण का अवसर प्रदान किया भगवान महावीर उस पुरातन निर्मल मत के अपने युग प्रवर्त्तक थे। संभवतः इसी कारण।

एक सुमिक्ष इतिहास कार ने लिखा था—

परम्परा की अवहेलना किये विना ही हम भगवान महावीर को जैन का संस्थापक नहीं कह सकते। उनके पूर्व के पार्श्व नष्ट (अन्तिम से पूर्व तीर्थ कर) को जैन धर्म का संस्थापक अधिक युक्ति युक्त होता है। पार्श्वनाथ की परम्परा के शिष्यों का उल्लेख जैन ग्रन्थों में मिलता है। इससे स्पष्ट है कि पार्श्वनाथ ऐतिहासिक पुरुष हैं।

संदर्भ—स्टडीज इन जैनिज्य, संख्या १ पृष्ट ६ लेखक डा० मकोदी।

इस कथन ने तो हमारा और न उपरोक्त इतिहास कार की इच्छा और आशय है कि भगवान महावीर की पार्श्वनाथ से तुलना की जाये अथवा उनके सुप्रयासी को रस दिया जाये, वल्कि भगवान महावीर के कार्यकलाप तो इस प्रकार रहे हैं कि उनकी प्रशंसा में तो चर अचर नतमस्तक है मगर भगवान पार्श्वनाथ उस रूप में अब परम्परा को लेकर आये थे जो उनमें पूर्व अन्य बाईस तीर्थंकरों ने स्थापित की थी। भगवान पार्श्व नाथ का पावन चरित्र उन सभी की विरासत को लेकर प्रस्फुरित हुआ है उस चरित्र में वे सभी गुणों का प्रस्फुटन हुआ है और इससे पूर्व कि भगवान पार्श्वनाथ का चरित्र आगे वढ़े अब परम्परा का

उल्लेख कर दिया। जिसकी शुरुआत के प्रथम तीर्थंकर अर्हनाथ रिषम देव ने की थी और जिस परम्परा को भगवान वर्द्धमान ने विश्व को समर्पित किया था तभी तो कवि सबसे नमस्कार करते हुए कहता है।

जय जय रिषभ आदि जोगीश, जय जय अजित अषै पद ईस।
जय जय संभव संभव हरी, जय अभिनन्दन आनन्द की।
जय जय सुमति सपति के दानि, जय जय पद्मभर पाति।
जय जय सुपास, काटन जग पासि, जय जय चंद्र परम सुष राशि।
जय जय नभि दभि दरिद शोक जय जय नेमी मदन मद भोर।
जय जय पादन पारस नाथ, जय जय वर्द्धमान सिवधाम।
इक में दूर गुण कियो बयान इन सब में सब ही परिवान।
जैसे दीयका होंहि अनेक तमहर उदो करण विधी एक॥

स्तुति कभी मनराम यह अपनी बुद्धि उनमान
दोप सबै की ज्यो पिमा तुम अपार गुन थान।

अर्थात,

प्रथम योगिश्वर रिषभ देव को अपत्रय पद के ईश अजित नाथ की जय। संसार का प्रत्येक वैभव त्यागने वाले संभवनाथ की जय हो। सुमति देने वाले सुमतिनाथ की जय हो। परम इसके खान पद्म प्रभु की जय हो। ससार का जाल काटने वाले सुपार्श्वनाथ की जय हो। परम सुख के धनि चन्द्र प्रभु की जय हो। मयामह दारिद्रय का दमन करने वाले नेमिनाथ की जय हो। और मदन के मद की जय हो, शिवधाम को प्राप्त करने वाले वर्द्धमान की जय हो।

जैसे नम: प्रकार के दीपक अन्धकार का हरण करते हैं किन्तु प्रकाश करने की विधी सब में एक समान होती है।

कवि मनराम का कथन है कि हे प्रभु ? मैंने अपनी लघु बुद्धि के अनुसार यह स्तूति की हैं, आप अपार गुणों से संयुक्त हैं अतः हमारे दोषो को दूर कीजिए।

५ | महाबली का मान भंग

राजा अश्व सैन रानी वामा देवी ने जो सोलह सपने देखे थे जो जन्माभिषेक हुआ था और धान जैसी हरी क्रांति से सुसज्जित भगवान पार्श्वनाथ का बचपन से लेकर निर्वाण तक सबको सर्तकता की ओर अग्रसर करते रहे ।

(१)

सोलह साल—

जन्म तिथी के सोलह साल बीत जाने पर पार्श्वनाथ नव यौवन से अंकित हुए तो उनको ज्ञान में अपार वृद्धि होती गई। और उनके लक्षण प्रेकट होने लगा। एक दिन अपने साथियों के साथ खेल कर आ रहे थे कि उन्होंने देखा कि उनकी माता पिता अर्थात उनका नाना आश्रम में पंचाग्नियों के बीच तप कर रहा था। इस व्यक्ति का नाम था महीपाल नगर का राजा महीपाल।

वह यह तप आत्म शुद्धि के लिये नहीं कर रहा था अपितु अपनी पत्नी के वियोग के कारण तप कर रहा था। तप की महत्ता होती है, मगर अर्थ शरीर को केवल दुख देना होता हैं तो बगुले भक्त न जाने कितने बड़े योगी होते। ढ़ोंग योग का सबसे बड़ा शत्रु है, फिर पाखन्ड को देखकर किसका मन झूठे तप के प्रति अनादर से नहीं भर पाता।

अतः भगवान पार्श्वनाथ ने जब अपने नाना को इस प्रकार पाखन्ड करते देखा तो न तो उन्होंने नमस्कार किया और न आदर दिखलाया। तब उनके नाना को क्रोध आ गया। मन में सोचने लगे कि मैं कुलीन हूँ, उच्च कुल में पैदा हुआ हूँ

तपोवृद्ध हूँ और इस लड़के की मां का पिता हूँ। इसके बावजूद यह अज्ञानी कुमार अहंकार से विह्वल है। मुझे नमस्कार किये बिना ही खड़ा है। इस प्रकार महाबली को भयंकर मदवान हो गया। भूल गया धर्म तो, एक वीतराग रूप ही है। आत्मा में अगर कुछ होना है तो केवल विनय भाव। जिस प्रकार वृक्ष जो फलवार होते हैं वे झुके होते हैं, उसी प्रकार आत्मा में जब विनय आती है तो आत्मा में पुण्य भाव आ जाता है, इस भाव को समाप्त करने वाले होते हैं—

—कठोरता
—अभिमान
—उद्धतपन
—क्रूर अहंम

जब आत्मा के साथ दुख घनीभूत हो जाये, कर्म बंध जायें तो आत्मा बोझिल हो जाती हैं, पाप पंक में फंस जाती है। और उसमें जो आत्मा केवल दिखावे मात्र के लिये तप किया जाता है तो वह झूठा मद, और झूठा तप, झूठा अहं, आत्मा को और अधिक मृत्यु का कर्जदार बना देता है। और जीव छोटा है या बड़ा, यह उसके कर्मों से उसके सच्चे ज्ञान से जाना जाता है। भगवान पार्श्वनाथ ने जब उस महीपाल को इस प्रकार ढोंग करते देखा तो उन्हें अपने सम्यक ज्ञान से सारी स्थिति मालूम हो गई। उन्होंने अपने ज्ञान से यह जान लिया था कि यह महीपाल जो तप कर रहा है, वह वास्तविक तप नहीं है।

(२)

तप क्या है ?

तप का नाम सुनकर ही लोगों को भय सा होने लगता है। शरीर को सुखा डालना यूं भी कोई बुद्धिमानी नहीं की जा सकती। वास्तविक विधि में तप शरीर को कष्ट देना नहीं होता अपितु उन कष्टों से छुटकारा पाना होता है। जिन्होंने कर्म बंध करके आत्मा को कलुषित बना दिया है। इसलिये तप का जो

५ | महाबली का मान भंग

राजा अश्व सैन रानी वामा देवी ने जो सोलह सपने देखे थे जो जन्माभिषेक हुआ था और धान जैसी हरी क्रांति से सुसज्जित भगवान पार्श्वनाथ का बचपन से लेकर निर्वाण तक सबको सतर्कता की ओर अग्रसर करते रहे ।

(१)

सोलह साल—

जन्म तिथी के सोलह साल बीत जाने पर पार्श्वनाथ नव यौवन से अंकित हुए तो उनको ज्ञान में अपार वृद्धि होती गई । और उनके लक्षण प्रकट होने लगा । एक दिन अपने साथियों के साथ खेल कर आ रहे थे कि उन्होंने देखा कि उनकी माता पिता अर्थात उनका नाता आश्रम में पंचाग्नियों के बीच तप कर रहा था । इस व्यक्ति का नाम था महीपाल नगर का राजा महीपाल ।

वह यह तप आत्म शुद्धि के लिये नहीं कर रहा था अपितु अपनी पत्नी के वियोग के कारण तप कर रहा था । तप की महत्ता होती है, मगर अर्थ शरीर को केवल दुख देना होता हैं तो बगुले भक्त न जाने कितने बड़े योगी होते । ढोंग योग का सबसे बड़ा शत्रु है, फिर पाखन्ड को देखकर किसका मन झूठे तप के प्रति अनादर से नहीं भर पाता ।

अतः भगवान पार्श्वनाथ ने जब अपने नाना को इस प्रकार पाखन्ड करते देखा तो न तो उन्होंने नमस्कार किया और न आदर दिखलाया । तब उनके नाना को क्रोध आ गया । मन में सोचने लगे कि मैं कुलीन हूँ, उच्च कुल में पैदा हुआ हूँ

तपोवृद्ध हूँ और इस लड़के की मां का पिता हूँ। इसके बावजूद यह अज्ञानी कुमार अहंकार से विह्वल है। मुझे नमस्कार किये बिना ही खड़ा है। इस प्रकार महाबन्नी को भयंकर मर्दवान हो गया। भूल गया धर्म तो, एक वीतराग रूप ही है। आत्मा में अगर कुछ होना है तो केवल विनय भाव। जिस प्रकार वृक्ष जो फलवार होते हैं वे झुके होते हैं, उसी प्रकार आत्मा में जब विनय आती है तो आत्मा में पुण्य भाव आ जाता है, इस भाव को समाप्त करने वाले होते हैं—

—कठोरता

—अभिमान

—उद्धतपन

—झू ा अहंम

जब आत्मा के साथ दुख घनीभूत हो जाये, कर्म बंध जायें तो आत्मा बोझिल हो जाती हैं, पाप पक में फंस जाती है। और उसमें जो आत्मा केवल दिखावे मात्र के लिये तप किया जाता है तो वह झूठा मद, और झूठा तप, झूठा अहं, आत्मा को और अधिक मृत्यु का कर्जदार बना देता है। और जीव छोटा है या बड़ा, यह उसके कर्मो से उसके सच्चे ज्ञान से जाना जाता है। भगवान पार्श्वनाथ ने जब उस महीपाल को इस प्रकार ढोंग करते देखा तो उन्हें अपने सम्यक ज्ञान से सारी स्थिति मालूम हो गई। उन्होंने अपने ज्ञान से यह जान लिया था कि यह महीपाल जो तप कर रहा है, वह वास्तविक तप नहीं है।

(२)

तप क्या है ?

तप का नाम सुनकर ही लोगों को भय सा होने लगता है। शरीर को सुखा डालना यूं भी कोई बुद्धिमानी नहीं की जा सकती। वास्तविक विधि में तप शरीर को कष्ट देना नहीं हाता अपितु उन कष्टों से छुटकारा पाना होता है। जिन्होंने कर्म बंध करके आत्मा को कलुषित बना दिया है। इसलिये तप का जो

व्यवस्था जैन शास्त्रों में की हैं वह अपने ढंग में अनूठी है।

महाबली यद्यपि वामा देवी का पिता था, पार्श्वनाथ भगवान का नाना था, मगर इसके बावजूद वह जो तप कर रहा था, अपने चारों ओर आग जला रहा था, उसमे तप की वे विशिष्टतायें पूरी नहीं होती थी।

सच्चे तप के विषय में शास्त्रोक्त वाणी को अध्यात्म वेदी बाल ब्रह्मचारी प्रद्युमन कुमार एम. ए, की मुखारित वाणी में इस प्रकार कहा जा सकता है—

तप में दो प्रकार की क्रियायें हुआ करतीं हैं। (१) आन्तरिक क्रिया, (२) बहिरंग क्रिया। आन्तरिक क्रिया कहते हैं अपने उपयोग को, चैतन्य स्वरूप के प्रति झुकाने को। विकल्प विचार इच्छा आदि अंतरंग मलीमसताओं को खत्म करना सो अंतरंग क्रिया है। अपने आपके सत्यस्वरूप में स्थित हो जाना इसका नाम है उत्तम तप धर्म। जहां इस आन्तरिक क्रिया पर दृष्टि होगी वहां क्लेश नहीं हो सकता। वहां तो आनन्द ही मिलेगा। लेकिन हम आप तो केवल बाह्य क्रियाओं पर ही ध्यान दिये हुए हैं इसलिये यह शंका हो जाती है कि इतने कठिन तपश्चरण कैसे करते हैं? उनको इससे क्या लाभ होता है? शरीर को सुखाना इसमें तो कष्ट ही होता है। तो उसमें इन बाहरी क्रियाओं पर ही ध्यान रखा। जब यह उपयोग अपने आपके चैतन्य स्वरूप में प्रतपन करता है, अपने विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावी निज आत्मतत्त्व में हीं उपयुक्त होता है तो यही उत्तम तप है।

ऐसे तपको अंगीकार करके जीवन में विशुद्धता आती है. समस्त प्रकार की कलुषतायें मिटती हैं। तो अपने उस विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभाव में स्थिर होना, लीन होना, चैतन्य स्वरूप में प्रतपन करना, इसी का नाम उत्तम तप है। यह तप उन योगियों का होता है जिन्होंने समस्त प्रकार के परिग्रहों को त्याग कर जीवन में तपको ही अंगीकार करके भली प्रकार कलुषताओं का

दमन करके निर्विकल्परूप स्थिति को पाया है। जो सुख दुख में, कंचन कामिनी में, शत्रु मित्र में, निन्दा प्रशंसा में समता परिणाम को धारण करते हैं उन योगियो को किस बल पर यह तप होता है. उस पर भी कुछ ध्यान जाना चाहिये। जिन ज्ञानी पुरुषों ने इस पर्याय से विरिक्त अपने आपके चैतन्य स्वरुप मात्र में अपने उपयोग को लगाया है उनके लिए शत्रु मित्र, प्रशंसा निन्दा, सम्मान अपमान आदिक में साम्यभाव रहता है। वो तो अपने आपके विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावी आत्म स्वरुप को ही अपने उपयोग में रखकर उसमें रमण किया करते हैं, और इसी रमण के लिए बाहरी तपश्चरण का विधान है।

'इच्छानिरोधश्तप', इच्छाओं का निरोध करना यही परम तप है। जो संस्कार अनादि कालसे मेरी शान्ति का घात करने वाले हैं—जैसे अभिलाषायें होना, कलुषतायें होना, रागादिक विकार भाव होना, आदि इन सब का निरोध करना इसका नाम तप है। जैसे अभी जो स्वर्णपाषाण है वह शुद्ध स्वर्ण नहीं है। उसमें अभी अशुद्धता है, किट्टकालिमा है, जब उसको सोलह ताव वाली अग्नि में तपा कर किट्टकालिमा को दूर कर दिया जाता है तब वह विशुद्ध स्वर्ण होता है, ठीक इसी प्रकार हम आप में जब तक इच्छाओं की विभावों की, विकल्प विचार तरंगो की जो कलुषतायें हैं तब तक हम आप मलिन हैं। हम आपको विशुद्ध बनने के लिए ये धूप में, अग्नि में या जमीन के अन्दर गड्ढे में पड़े रहने रूप कुतपों से काम न चलेगा। अरे इस ध्यान रूपी अग्नि को प्रज्वलित करके समस्त प्रकार की पर्यायबुद्धियां, पर की उपासना, समस्त प्रकार की कलुषतायें इन सबको ध्वस्त करना होगा। हमारे ऊपर जो अष्ट प्रकार के कर्मों का विकट बोझ बन्धन लगा हुआ है उनको ध्वस्त करने के लिए तपरूपी अग्नि को प्रज्वलित करना होगा। कोई चाहे कि हम सुखियापन से रह लें और मेरे कर्मरूपी ईंधन का ढेर भी ध्वस्त हो जाये तो

ऐसा हो कैसे सकता है ? अरे जिन तीर्थंकरों के ध्रुवसिद्धि का नियम है उनको भी तप करना पड़ा। तब वे अपने आत्मा को विशुद्ध बना सके। तब फिर यहां हम आप देह के सुखिया रहकर किस तरह से इतने बड़े अष्ट कर्मों के ढेर को ध्वस्त कर सकेंगे ? अरे इस देह के सुखियापन को छोड़ना होगा। यहां के इन इन्द्रिय विषयों में ठोकर मारनी होगी, अपने आपके चैतन्य स्वरूप में जब लीनता होगी तभी इन समस्त प्रकार के कर्ममैलों का विध्वंस हो सकेगा। और तभी हमें वास्तविक आनन्द मिलेगा।

हम आपको आज यह मनुष्य शरीर मिला हुआ है, तो इसको पाने की सार्थकता इसको तप में लगाने में है। जैसे यहां पर कोई कारखाना लगाता है तो उसको मशीनरी फिट करनी होती है, वह मशीनरी लगाता है तो ऐसा थोड़े ही सोचता है कि यह घिसे नहीं, इसका कोई पेंच पुर्जा बिगड़ने न पावे अरे वह तो मशीन को चलायेगा, मशीन भी घिसेगी, पुर्जे भी धीरे-धीरे कमजोर होंगे, उन्हें भी वह बदलेगा। तभी वह अपने वस्तु उत्पादन के कार्य में सफल हो सकता हैं। इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष इस शरीर को पाकर इसे एक मशीन समझकर इसके द्वारा शान्ति का कारखाना लगाते हैं। इसका सदुपयोग करते हैं। उनको अपने इस शरीर रूपी मशीन के द्वारा शान्तिरूपी वस्तु का उत्पादन करना है तो वे शरीर को तो अपना कारखाना समझ लेते हैं। वे यह नहीं देखते कि इसको ज्यों का त्यों रखें। अरे वे तो इस शरीर रूपी कारखाने को घिसने भी देते हैं इसमें कोई अंगोपांग रूपी पेंच पुर्जा बिगड़ेगा तो उसे भी सुधरवायेंगे, और इसको कारखाने की भांति चला कर शान्ति रूपी वस्तु का उत्पादन करते हैं। इस शरीर की सार्थकता तो आत्मशान्ति पा लेने में ही है। शरीर को तप में लगाने से शान्ति प्राप्त होती है।

इस शरीर की सार्थकता तो इस तप से ही है. ऐसी बात ज्ञानी पुरुषों के चित्त में घर किए हुए रहती हैं। तो मूल में दो

प्रकार से तप बताये गये है (१) अंतरंग तप (२) बहिरंग तप अब बताये हैं कि अंतरंग तप भी छः प्रकार के हैं।

अतरंग तप—(१) प्रायश्चित (२) विनय (३) वैयावृत (४) स्वाध्याय (५) व्युत्सर्ग (६) ध्यान।

वहिरंग तप—अनशन (२) अवमौदर्य (३) वृतिपरिसंख्यान (४) रसपरित्याग (५) विविक्त शय्यासन और (६) कायक्लेश।

अव अंतरंग तप के विभागों में पहले प्रायश्चित तप को कीजिये।

(१) प्रायश्चितप—प्रायश्चित के अन्दर दो शब्द हैं. प्रायस और चित, प्रायस का अर्थ है अपराध और चित का अर्थ है शुद्धि करना। याने अंतरंग में जो रागद्वेष रूप अथवा विषयकषायरूप अपराध होता है, दोष लगते हैं उसकी शुद्धि के लिये जो तपश्चरण किया जाता है उसे कहते हैं प्रायश्चित तप। इन रागद्वेषादि विकारों को विषयवासनाओं को इस तप बल के द्वारा पनपने ही न दें, उनको जड़ से समाप्त करें। किस विधि से ये समाप्त होंगे ? आत्मनिन्दा द्वारा, देवशास्त्रगुरु के समक्ष या अपने से विद्वान जन के समक्ष प्रायश्चित करके अनेक प्रकार के विधि विधानों द्वारा उन विकारों को, मालीनताओं को, कलुषताओं को ध्यस्त किया जा सकता है। तो ऐसे तपका नाम है प्रायश्चित तप।

(२) विनयतप—मूल में तो विनय वह है अपने आप जो बाह्य में दृष्टि लगाये हुये हैं विकारों के कारण यह आत्मा संतप्त हो रही है, उन सब विकार भावों से हटाकर यह आत्मा अपने आपके शुद्ध आतम स्वाभाव की ओर झुके यही आत्मा की वास्तविक विनय है। ज्ञानी पुरुष अपने आपके प्रति झुकते हैं, यही उनको अपने आपके लिये वास्तविक विनय है। इस वास्तविक विनय को करके वे अपने आप तप की सिद्धि कर लेते हैं और व्यवहार में जो सम्यकदर्शन-सम्यकज्ञान और सम्यकचारित्र हैं उनके

प्रति विनय होवे, गुरूजनों के प्रति साधर्मी बन्धुओं के प्रति देव शास्त्र गुरू के प्रति अपनी विनय होना यही है विनय तप।

(३) वैयावृत तप — व्यवहार में देखो तो गुरुजनों की दीन दुखी रोगी आदिक की सेवा को वैयावृत्ति कहते हैं, पर वास्तविक वैयावृत्ति तो अपने आत्मस्वरूप की सेवा करना है। आत्मस्वरूप इन विषयविकार आदिक मिथ्या भावों के कारण मलिन है: दुखी है, पीड़ित है, सो उसकी वैयावृत्ति तप है। इन विषय भोगों रूप पदार्थों को इस मोहि मलिन प्राणी ने अपने चित्त में बसा रखा है। इसके कारण आज इसकी मलिन दशा है। इस मलिनता का दुःख का, संताप का निवारण करने के लिये वैयावृति तपश्चरण करना होगा। ज्ञानी जन इसी आत्मस्वभाव की वैयावृति के लिये सदामतत प्रयत्नशील रहा करते हैं तो यही उनका वास्तविक वैयावृत्ति तप है।

(४) स्वाध्याय—व्यवहार में स्वाध्य कहते हैं वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्रों के अध्ययन करने को। इस स्वाध्याय शब्द में दो शब्द हैं—स्व और अध्याय, स्व का अर्थ है आत्मा और अध्याय का अर्थ है अध्ययन करना, चिन्तन करना, मनन करना, इसका नाम है स्वाध्याय। अपने आप के बारे में ऐसा चिन्तन होना कि मैं आत्मागर्व से पृथक एक ज्ञानमात्र आत्मतत्व हूँ। सबसे निराला हूँ इस मुझ आत्म का किसी भी पर पदार्थ से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है यह आत्मा मात्र जानन देखनहार है। इसका स्वरूप ज्ञायक है। इस असमानजातीय द्रव्यपर्याय में मनुष्य हूँ, त्यागी हूँ, विद्वान हूँ, आदिक रूप में अपने को अनुभव करना यह तो एक मूढ़ता भरी बात है और अपने आपको समस्त पर्याय बुद्धि से पृथक होकर चैतन्यस्वरूपमात्र विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभाव मात्र अपने आत्मस्वभाव को उपयोग में लेना यही है वास्तविक स्वाध्याय और इस

स्वाध्याय की प्राप्ति के लिए वीतराग पुरुषों द्वारा कहे हुए शब्दों का संकलन जिनवाणी में है। अतः जिन वाणी का स्वाध्याय कर के अपने चैतन्य स्वभाव में स्थिर होवें।

(५) व्युत्सर्गतप—इस काय (शरीर) से ममत्वका छोड़ना और अपने आपको निर्ममत्वस्वरूप को चिन्तवन करना व्युत्सर्ग तप है। यह देह तो आत्मा से अत्यन्त भिन्न स्वरूप रखती है। यह तो पौद्गलिक है, अमूर्तिक है, रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि का पिण्ड है। मैं आत्मा चैतन्यस्वरूप हूँ, इस शरीर से बिल्कुल भिन्न पदार्थ हूँ, इस प्रकार का चिन्तन करना सो व्युत्सर्ग तप है।

(६) ध्यान तप—पहिले जो ५ प्रकार के तप बताये गये हैं उन सबका प्रयोजन है इस उत्तम ध्यान की स्थिति में आने का। यह ध्यान क्या है ? अपने आपको ऐसा अपने आपके आत्मस्वरूप में तल्लीन कर देना कि जहां किसी प्रकार का बाह्य चिन्तन न रहे, विकल्प न रहें, मात्र अपने चित्रस्वभाव में ही अपना उपयोग गड़ जावे, ऐसी स्थिति को कहते हैं ध्यान। जैसा कि तत्वार्थसूत्र में कहा है कि 'एकाग्रचिन्तानिरोधोध्यानम्', अर्थात् एक ही विषय की ओर चित्त का लग जाना और अन्य चिन्ताओं से मुक्त हो जाना सो ध्यान है।

इस उपरोक्त ६ प्रकार के अंतरंग तपों से कर्मो की निर्जरा होती है, कर्ममलीमसतायें धुलती हैं और आत्मा निर्मल बन जाती है, पर इन ६ प्रकार तपश्चरण करने के लिए जो बाह्य तपश्चरण सहायक रूप से ६ प्रकार के बताये गये हैं उनको भी करना आवश्यक है। ये बाह्य तपश्चरण अंतरंग तपश्चरण के कारण हैं। वे ६ बाह्य तप इस प्रकार हैं—

बाह्यतप—(१) अनशनतप—चार प्रकार के आहार का

त्याग कर देना सो अनशन तप है। वे चार प्रकार के आहार हैं खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय। अनशन का दूसरा अर्थ उपवास भी है। उपवास शब्द का अर्थ भी यही है–उप मायने समीप और वास मायने रहना, अर्थात् अपने आपके समीप वास करना सो उपवास है। अब यह काम कैसे हो? सो जहां पर आहार करने का भी विकल्प न हो; मात्र अपने आत्मस्वरूप के निकट वास करने का जहां ध्यान हो' झुकाव हो ऐसी स्थिति पाने के लिये यथाशक्ति अनशन करना भी आवश्यक है। इन चारों प्रकार के आहारों का त्याग किया जाता है विषयकषायों पर विजय प्राप्त करने के लिए। जब तक इन विषयकायों पर विजय नहीं प्राप्त की जायेगी तब तक आत्मस्वरूप में रमण करने की स्थिति बन नहीं सकती। अतः इन विषयकाय आदिक विकार भावों से बचने के लिए अनशन आवश्यक बताया गया है। आगम में एक जगह कहा है कि—

कषायविषयाहारों, त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासा सविज्ञेया, शेष लंघनक विदुः॥

अर्थात् यदि चारों प्रकार के आहार का त्याग तो कर दिया विषय कषायों का और तत्सम्बन्धी इच्छाओं का त्याग न किया तो आचार्य देव कहते हैं कि उसका उपवास नहीं कहलाया। वह तो लंघन है। ऐसा उपवास क्या फल देगा जिससे व्याकुलता हो जाये, आकुलता मच जाय। वहां तो उपवास करके भी यही मन करता है कि कब दिन पार हो, दूसरा दिन हुआ नहीं कि आहार करने की बड़ी जल्दी पड़ जाती हैं। तो ऐसा उपवास करने से फायदा भी क्या हुआ? जहां आकुलतायें मच जायें ऐसा अनशन करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति यहीं होती। उपवास में विषयकषाय और आहार इन तीनों चीजों का त्याग होता है। अरे अनशन का मुख्य प्रयोजन तो था कि सर्वप्रकार के आरम्भ परिग्रह विषयकसाय आदिक से दूर रह कर एक इस

आत्मध्यान में लीन हुआ जाए। पर कोई अनशन करके इन्हीं लौकिक कार्यों में ही पड़ जाए तो उससे लाभ क्या पाया अथवा कोई सोचे कि चलो आज अपना अनशन का दिन है, इसे तो निद्रा लेकर व्यतीत करे, तो उससे भी क्या सिद्धी मिल पायेगी अरे यह अनशन तप तो आत्म ध्यान के लिये है जिस दिन अनशन है उस दिन पूरा समय धर्मध्यान में व्यतीत किया जाए उस चिन्तन में ऐसा विचार किया जाए कि हे. आत्मन मैंने अनादि काल से लेकर अब तक न जाने कितना २ खाया है पर उससे कभी तृप्ति नहीं मिली। अब तो मैं चौबिस घन्टे के लिये किसी भी प्रकार के आहार को न ग्रहण करूंगा उसका विकल्प तक भी न रखूंगा। अरे जब कभी भी आज तक इस आहार से तृप्ति न हुई अब उसकी क्या इच्छा करना। यह आत्म अविनाशी है कहीं हमारे एक दिन आहार न करने से यह आत्मा मिट न ही जायेगा। अपने अनशन स्वभावी आत्मा का चिन्तवन करना यही प्रयोजन है इस अनशन तप का।

देखो—लोगों में एक ऐसा सुखियापन होता है कि वे एक को भी राजी खुशी से आहार नहीं छोड़ पाते हैं पर कदाचित बिमार हो गये डाक्टर ने दो हफ्ते को अन्न छुड़वा दिया तो बड़ी राजी खुशी से उसी प्रकार कभी कभी आहार का विकल्प छोड़कर आत्मध्यान करें तब तो उद्धार हो जायेगा। जरा चिन्तवन करो नरक भूमि की क्षुद्रा तृषा आदि की वेदनाओं का। तीनों लोक का सारा का सारा अन्य खा जाये फिर भी क्षुधा न मिटे इतनी विकट क्षुधा की वेदना वहां होती है, फिर भी एक कण भी अन्न खाने को नहीं मिलता। जब ऐसी बात है तो फिर यहां स्वच्छन्द बन कर आहार के लिये अपना क्या प्रवर्तन बनाया जा रहा है! अरे कुछ तो चेतें और अनशन तप के द्वारा अपने उत्तम कार्य को

कर लेवें, इससे ही उसे अपने जीवन की सार्थकता है।

२) अवमोदर्य तप—अल्प आहार का नाम है अवमोदर्य। इसे ऊनोदर भी कहते हैं। इस अवमोदर्य शब्द में दो शब्द हैं अव तथा मोदर्य। अव का अर्थ है कम और मोदर्य का अर्थ है पेट, अर्थात् पेट के कम खाने का नाम है अवमोदर्य तप। भूख से कम से कम खाना यह तो अनशन से भी बड़ा तप है जैसे अनशन तप करने से विषयकसाय आदिक के विकार भाव सिथिल हो जाते हैं ऐसे ही इस तप करने से निद्रा, आलस, प्रमाद, विषयकषाय आदिक विकार भाव सिथिल हो जाते हैं। अनशन तप से बड़ा तप इस ऊनोदर को कहा है। भूख से कम खाना वास्तव में एक ऊंचा तप है। जैसे कोई कपड़े का व्यापारी हो उसके यहां लोग शादी ब्याह आदिक के लिए कपड़ा खरीद रहे हैं तो वह व्यापारी दुकान को छोड़ना नहीं चाहता, क्योंकि अधिक आय होने की सम्भावना हैं। पर यदि कोई व्यापारी ऐसे मौके पर भी उस दुकान को काम काज की उपेक्षा कर दे तो यह उसके लिये अधिक प्रशंसा की बात है, क्योंकि उसकी इसमें अशक्ति नहीं हैं ठीक उसी प्रकार जहां भोजन सामग्री बहुत रखीं हो, अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन रखे हो और उनकी यह उपेक्षा करके अधपेट ही खा कर चल दें तो यह तो उसके लिये प्रशंसा की बात हैं क्योंकि उसकी उस भोजन में आशक्ति नहीं है। तो यह ऊनोदर तप इन अनशन तप से भी कठिन तप है।

(३) वृत्तिपरिसंख्यानतप :—जब साधू जन आहार करने के लिये निकलते हैं—जैसे यदि अमुक गली में चौका होगा तब तो आहार करूंगा, इतने लोग इस तरह की चीजें लेकर यदि पड़गाहने के लिये खड़े होगें तब ही आहार लूंगा आदि अनेक प्रकार की आखड़ी लेकर मुनिजन आहार के लिये निकलते है ? अरे आहार करने को भी वे एक आफत समझते हैं। आहार वे करना

ही नहीं चाहते । उसमें उन्हें असक्ति ही नहीं सो वे अपने उदय की परीक्षायें करते रहते हैं । अगर योग्य विधि से आहार मिल गया तो ले लिया । नहीं तो उसकी भी उपेक्षा करके चल देते हैं बहुत बहुत मनाया जाने पर भी वे आहार नहीं लेना चाहते । उनका उस आहार के प्रति उपेक्षा का भाव रहता है । ऐसा वृत्ति-परिसंख्यान तप करके वे मुनिजन अपने में छिपे हुए रागद्वेष विषयकपाय आदिक मलीमसताओं के संस्कारों को शिथिल बनाते रहते हैं ।

(४) रसपरित्यागतप :—जो भी खाद्य अथवा पेय पदार्थ होते हैं उनमें स्वाद तो होता ही है । तो स्वाद की दृष्टि से तो वे मुनिराज आहार ग्रहण नहीं किया करते । स्वादिष्ट भोजन करने से रसना इन्द्रियों की लम्पटता प्रतीत होती है । अतः इस रसना इन्द्रिय पर कन्ट्रोल करने के लिये वे मुनिजन नीरस आहार ग्रहण किया करते हैं । नीरस आहार करने से विषयादिक की वासनायें क्षीण हो जाती हैं । अतः यह नीरस भोजन धर्म मार्ग में प्रगति करने के लिये सहायक होता है । फिर मुनिजन तो आहार करते हैं मात्र इस शरीर को टिकाये रखने के लिये । तभी तो मुनी जनों के लिये खड़े २ आहार लेने का विधान है । खड़े होकर लेने में इस बात का परीक्षण है कि शारीरिक शक्ति कैसी हैं । खड़े होकर भोजन करने से स्वाद लेने की या भोजन में आसक्ति जगने की बात नहीं बन पाती है । वे मुनिजन घासवत नीरस आहार करते हैं । वे केवल पेटरूपी खड्डा भरने के लिये कभी केवल एक ही रस ले रहे, कभी दो ही, आदि रसों को परित्याग करके भोजन करते हैं । इस तप का आज जैसा विकृतरुप नहीं है नमक के त्याग में मीठे पदार्थों का ग्रहण किया, मीठे के त्याग से मुनक्कों का मीठा बना लिया, और दूध के त्याग में बादामों का दूध बना लिया आदि । सच्चे योगी का तप अपने हित का अर्थ होता है अपने भोजन लोलुपता तोड़ने के सम्बन्धी संस्कारों का

अर्थ होता है। खड़े होकर भोजन करने में एक बात और भी है कि जिस तरह बच्चों को अपने खेल में मस्त होने से खाने के लिये जब मां बुलाती है तो खड़े ही खड़े खाकर खेलने चले जाते हैं झटपट इसी तरह उन योगी पुरुषों को अपने आप के ध्यान की ऐसी धुन रहती है कि उन्हें कहां फुरसत की बैठकर भोजन कर ले। वे खड़े २ ही झटपट जो कुछ मिला उसे खाकर आत्म-ध्यान को चल देते हैं। देखिये चरणानु योग के शास्त्रों में जो भी चर्चायें आयी हैं उनमें वैज्ञानिक विशेषतायें भी भरी है सो उन विशेषताओं को समझे और उनके अनुसार अपने आपको ढालें तो फिर ऐसा नहीं हो सकता कि उन विधियों के द्वारा हम अपने आपके चैतन्य प्रकाश को प्राप्त न करें। तो इन ६ प्रकार के बहिरंग तपों में रस परित्याग तप को भी बड़ा महत्व दिया गया है।

(५) विविक्तसमयाशनतप--एकान्त स्थान में सोना, उठना बैठना इसका नाम है विविक्तसमयासन। देखिये---आत्मा का जो सर्व पदार्थों से विशिष्ट स्वरूप है उसे अपने उपयोग में लाने के लिए विविक्तसमयासन तप करने की परम आवश्यकता है। गृहस्थजनों के बीच रहकर नगरों में रहकर इन मोहीजनों के सहवास में रह-कर आपके विविक्तसमयासन का ध्यान नहीं किया जा सकता, आज तो देखते हैं कि त्यागी लोग भी करने लगते हैं कि आज तो हम यहां अकेले ही रह गये, अमुक लोग चले गये, यहां हमारा मन ही नहीं लगता। अरे अपने जीवन से कुछ कल्याण की दिशा में बढ़ना है तो इस विविक्त सययासन तप का स्वागत करना होगा। उन मोहीजनों का संसर्ग छोड़कर एकान्त स्थानों में रहकर धर्म साधना करनी होगी। देखो जिन पुरुषों के चरित्र आज हम आप पढ़ते हैं उन्होंने भी क्या किया था? सारके इन मायामयी प्रसंगों को छोड़कर हजारों वर्ष जगलों में, निर्जन एकान्त स्थानों में रह कर इसी विविक्तसमयासन तप को किया था। तभी वह अपने

आपके अनन्त आनन्द की स्थिति को प्राप्त कर सके।

६– कायक्लेशतप—अन्तिम। वाह्य तप है कायक्लेश। अपने आपको परीक्षा के लिए प्रतिकूल परिस्थितियों में भी रहते हुए मुनिजन कायक्लेश तप को तपा करते हैं। जैसे गर्मी के दिनों में पहाड़ों की तप्त चट्टानों पर बैठकर तपश्चरण करना अथवा शीतकाल में नदियों के तट पर अत्यन्तशीत के स्थानों में) बैठ कर कायक्लेशरूप तप करना, बरसात के दिनों में पेड़ों के नीचे ही बैठकर तपश्चरण करना, ऐसी प्रतिकूल स्थितियों में वे मुनिजन इस काया (शरीर) पर जरा भी दृष्टि न रखकर अपने स्वरूप में लीन हुआ करते हैं। काय सम्बन्धी क्लेशों को क्लेश न मानकर वे आत्म स्वरूप में लीन हुआ करते हैं। काय सम्बन्धी क्लेशों को क्लेश न मानकर वे अतः प्रसन्न रहा करते हैं। देखिये सुकमाल गजकुमार तथा पांचों पाण्डवों आदि के दृष्टान्त हमारे सामने है सुकुमार बाल्यावस्था में किस तरह से पले पुसे थे, पर मुनि अवस्था में जिस समय उनके शरीर का भक्षण सिंहनी (उनकी ही पूर्व भव की भावी कर रही थी, पर उस घोर उपसर्ग के समय भी रंच मात्र विचलित न हुए। वे अपने आत्मध्यान ही लवलीन थे, यह था उनका कायक्लेश तप। गजकुमार के सिर पर उनके ही ससुर ने अंगीठी जलाई लेकिन वे उस समय आत्म ध्यान में इतने लवलीन थे कि वे बाहरी उपद्रव उन्हें उपद्रव ही नहीं प्रतीत हुये। शरीर की ओर उनका कुछ ध्यान ही न था। वे तो अपने आत्म ध्यान में रत होकर अनन्त आनन्द में विभोर हो रहे थे। यह था उनका कायक्लेश।

देखो पांचों पाण्डवों को उनकी मुनि अवस्था में कौरव वंश के द्रोही लोगों ने बदला चुकाने के लिये अग्नि में तृप्त किये हुए लोहे के आभूषण पहनाये थे। उनका सारा शरीर जल रहा था, लेकिन उन घोर उपसर्गों पर वे रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए। उन्हें तो इस शरीर की ओर ध्यान ही न था। वे तो अपने आत्म-

स्वरूप में ही स्थित रहे। अतः इन घोर उपसर्गों के समय में भी रंच मात्र को भी विचलित नहीं हुए। यह था उनका कायक्लेश तप। देखिये-कुथलगिरी पर्वत पर देशभूषण और कुलभूषण ध्यान में थे। उन पर किसी दैत्य ने कितने हीं उपसर्ग ढाये, पर उन उपसर्गों को सहन करते गये। यह किस वल का प्रताप था ? कौन सी चीज उन्होंने पा ली थी जिसकी वजह से ऐसे घोर उपसर्गों के समय भी जरा भी विचलित नहीं हुए। अरे उन्होंने इस शरीर से भिन्न अपने आपके आत्म स्वरूप को पहचाना था। इस आत्म स्वरूप के ध्यान में मग्न होने के कारण ही उन्होंने उन घोर उपसर्गों को समता पूर्वक सहन किया था। वे रंच भी अपने स्वरूप से न डिगे थे, यह था उनका कायक्लेश तप।

इस तपश्चरण का कितना चमत्कार है इसका एक जीता जागता उदाहरण है। एक रूपलक्ष्मी नाम की महिला थी, वह पंचमी के ५-५ दिन के उपवास किया करती थी। वह वड़ी भोली-भाली थी, उसने अपने जीवन में कभी रोना नहीं सुना था। तो एक वार क्या घटना घटी कि वह सपने घर से कहीं वाहर जा रही थी, सो रास्ते में उसे एक रोती हुई महिला दिख गई। उसका कोई वेटा मर गया था, जिससे वह रो रही थी। तो रूप लक्ष्मी ने जब यह रोना सुना तो समझा कि यह तो कोई स्त्री गीत गा रही है। उसने कभी रोना सुना ही न था। इसलिये उसे गीत समझ लिया। सो उस रोने वाली स्त्री से कह उठी कि वहिन तुम तो वहुत अच्छा गा रही हो। उसे लग गया वुरा कि देखो हमारा तो वेटा मर गया जिससे हम रो रहे हैं और यह कहती है कि तुम वड़ा अच्छा गीत गा रही हो। उसने यह प्रतिज्ञा की कि मैं भी इसको इसी तरह से रुलाकर रहूँगी। क्या उपाय किया कि एक मिट्टी के सकोरे में जहरीला सर्प भरकर उसे वन्द करके रूप लक्ष्मी को दिया और कहा वहिन इस सकोरे के अन्दर वड़ी कीमती रत्नों की माला है,

उसे तू अपने बेटे को पहिना देना वह तो घर चली गई । उधर उस स्त्री ने अपने बेटे से कहा कि बेटा तुम ९ बार णमोकारमन्त्र पढ़कर इस सकोरे के अन्दर से रत्नमाल निकालकर पहिन लो बेटे ने वैसा ही किया । उसे उस सकोरे के अन्दर कीमती रत्नों की माला मिली । उसने उसे पहिन लिया । पहिनकर फिर उसी सकोरे में रखकर बन्द कर दिया । दूसरे दिन वही स्त्री जो कि वह सकोरा दे गयी थी, आती है । वह सोच रही थी कि उसका बेटा तो सर्प के काटने से मर चुका होगा, पर वहां जाकर देखा तो बात कुछ और ही और थी । पूछा बहिन, वह रत्नमाल अपने बेटे को पहिनाया था ?—हां बहिन पहिनाया तो था । वह तो बहुत ही सुन्दर रत्नमाल है ।—कहां रखा है ? उसी सकोरे में । जब उस स्त्री ने उस सकोरे में हाथ डाला तो उस जहरीले सर्प ने उसको डस लिया और वह मरण को प्राप्त हो गयी । तो इस दृष्टान्त से अपने लिये शिक्षा योग्य बात यह लेना है कि उस रूप लक्ष्मी के पंचमी के ५-५ दिन उपवास करने का यह फल था कि उसकी रक्षा हुई तो हम आपको ये व्रत उपवास आदिक तपश्चरण करके अपने जीवन को सुरक्षित बना लेना चाहिये और अपने भविष्य को उज्जवल बना लेना चाहिये ।

तपश्चरण करने का प्रभाव है आत्मा की विशुद्धि होना । तपश्चरण करने वालों का प्रभाव दूसरों पर भी पड़ता है देखिये जब राजा श्रेणिक ने यशोधर मुनिराज के गले में जंगल में मरा हुआ सर्प डाला था और चेलना ने बाद में उस उपसर्ग का निवारण किया था तो उस समय मुनिराज ने दोनों को ही (उपसर्ग करने वाले को और उपसर्ग हटाने वाले को) एक ही आशीर्वाद दिया था 'उभयोधर्म वृद्धि', अर्थात तुम दोनो को धर्म वृद्धि हो । इतनी बात को सुनकर राज श्रेणिक पर बड़ा प्रभाव पड़ा ओह धन्य है ये मुनिराज उनकी दृष्टि में उपसर्ग करने वाला और

उपसर्ग हरने वाला दोनों ही बराबर है। उस समय राजा श्रेणिक के भाव अत्यन्त विशुद्ध हुए। सो देखिये—भावों का फल कि कहां तो उपसर्ग करते समय राजा श्रेणिक ने ३३ सागर की आयु सातवें नरक की बांधी थी, और उस समय मुनिराज द्वारा आशीर्वाद के शब्द सुनते समय ऐसे विशुद्ध भाव हुये कि केवल पहले नरक में ८४ हजार वर्ष की आयु रह गई। यह आत्मविशुद्धि का ही तो प्रताप है। तपश्चरण करने का यह फल है। आत्म-विशुद्धि होना प्रत्येक कल्याणार्थी को आत्म विशुद्धि करने के लिये तपश्चरण को अंगीकार करना ही होगा।।

एक और भी दृष्टान्त देखिये—एक रानी का बाग था वह रानी बाग को हरा भरा बनाये रखने की शौकीन थी। एक बार जब वह बीमार हुई तो अपने बेटे से बोली बेटा—मैं तो बीमार हो गयी हुं। सो जब तक मै ठीक न हो जाऊं तब तक तुम इस बगीचे को सींचकर सिंचाई वगैरह करके खूब हरा भरा बनाये रखना। अच्छी बात अब वह बालक क्या करता है कि प्रतिदिन डाली डाली, पत्ती पत्ती खूब धोता था, साफ करता था। किसी भी पत्तों में डाली में धूल लग गई हो तो तुरन्त बड़ी सावधानी से उसे धोकर साफ कर देता था। यह क्रिया वह बालक प्रतिदिन करता रहा, पर हुआ क्या कि थोड़े ही दिनों में सारा बाग सूख गया। जब उसकी मां ठीक हुई और देखा कि सारा बाग सूख गया तो बहुत दुखी हुई और बोली —बेटा तुमने इस बगीचे को सींचा नहीं था ?—अरी मां मैंने सारे बगीचे को बहुत२ सींचा था। सारी पत्तियों, सारी डालियों को एक एक को मैंने प्रतिदिन खूब जल से धोया, साफ किया किसी पत्ती या डाली पर धूल का धब्बा भी नहीं लगने दिया। मां मैने तो बड़ा श्रम किया, फिर भी बाग सूख गया। बेटा तुमने जड़ों में पानी डाला था कि नहीं। मां जड़ों में तो पानी डाल नहीं पाया। अरे तो कैसे बगीचा हरा भरा रह सकता है ? ठीक यही हाल हम आप अपने लिये

सोचें आत्मा की बात को तो चित्र में न लावें और हम आप इस त्याग मार्ग को तो अपना लेवें तथा त्याग मार्ग में आने के मर्म को न पहिचाने आत्मस्वरूप की लीनता लाने की बात चित्त में न लावें और केवल ऊपरी त्यागीपने का ढोंग बनाये रहे तो जरा सोचो तो सही कि अपना यह आत्मउपवन किस तरह से हरा भरा रह सकेगा ? अरे जिस तरह से डाली, पत्ता-पत्ता सींचने से बगीचा हरा भरा नहीं रह सकता, सींचना चाहिये वृक्ष की जड़ों को, ठीक इसी प्रकार केवल ऊपरी सफाई रखन से ऊपरी कुछ क्रियाओं को ही करके उनमें ही धर्म मानकर उनमे अटके रहने से काम न चलेगा। सबसे पहले जड़ को सींचना होगा अर्थात् अपना लक्ष्य विशुद्ध बनाना होगा तभी इस धर्मरुपी वृक्षों को पालकर आत्म उपवन को हरा-भरा रखा जा सकेगा।

यह जीवन तो दनादन ही बीता जा रहा है। बीता हुआ समय वापिस लौटकर नहीं आता। पर्वत से गिरने वाली नदी की तरह यह जीवन नीचे की ओर लुढ़कता जा रहा था। अतः शीघ्रता करो इस तपश्चरण को पाने के लिये अन्यथा तो सारी उमर यों ही व्यर्थ में व्यतीत हो जायेगी और अन्त में पछतावा ही लगेगा। जैसे एक प्रसिद्ध दृष्टान्त है कि समय के फेर से कोई सेठ गरीब हो गया। वह अपने मित्र राजा के पास जाकर निवेदन करता है कि महाराज मैं कुछ दिनों से गरीब हो गया हूँ, कृपाकर आप मुझे कुछ धन दीजिये। तो राजा बोला—अच्छा कल तुम दो बजे से चार बजे तक हमारे हीरा जवाहरात के खजाने में चले जावो और उन दो घंटों में जितना हीरा जवाहरात तुम ले जा सको ले जाना। अपने पहरेदार को भी इस बात की सूचना दे दी कि कल के दिन अमुक सेठ आयेगा, उसे दो बजे से चार बजे तक जितना चाहे रत्न ले जाने देना मगर समय पुरा हो जाने पर तुरन्त बाहर निकाल देना। सो पहुँचा वह सेठ रत्नों के खजाने में। तो अन्दर पहुंच कर क्या देखता है कि बड़े सुन्दर

खेल खिलौने रखे हैं सो मन में आया कि अभी समय तो काफी है, पीछे ले लेंगे रत्न जवाहरात।

अभी कुछ खिलौने देखे। हुआ क्या कि उन खेल खिलौनों के देखने में ही सारा समय व्यतीत हो गया। पहरेदार ने उसे तुरन्त निकाल कर बाहर किया। सेठ फिर पछताता हुआ राजा के पास गया, बोला—'महाराज आज तो हमारा खजाने में जाना ही बेकार हो गया। खेल खिलौनों में ही रमकर सारा समय खो दिया। कृपा कर आप मुझे कुछ धन दे दीजिये।' राजा ने फिर कहा—'अच्छा कल तुम उसी समय पर दो घटे के लिये सोने के खजाने में जाकर जितना चाहे सोना ले आना।' पहुँचा सेठ दूसरे दिन सोने के खजाने के अन्दर, तो वहां क्या देखा कि बड़े सुन्दर घोड़े बंधे हुए थे, उनमें से एक काला घोड़ा बहुत ही सुन्दर था। वह घोड़ों का शोकीन तो था ही, तो उस काले घोड़े पर बैठकर घूमने लगा, इसी प्रक्रिया में दो घटे का समय व्यतीत हो गया और चपरासी ने कान पकड़ कर निकाल दिया। फिर राजा के पास पहुँचा, बोला—'महाराज आज भी मैं वहां से कुछ न ला सका समय घुड़सवारी करने में ही निकल गया। तो राजा ने कहा—'अच्छा कल के दिन तुम चांदी के खजाने में जाकर उसी को दो घटे' में जितना चाहे चांदी ले आना। सेठ तीसरे दिन फिर पहुँचा तो वहां क्या देखता है कि एक गोरखधधे का खेल था। कुछ छल्ले एक-दूसरे से फंसे थे। किसी छल्ले को सेठ ने छू लिया तो वह उलझ गया। चपरासी ने कहा—'सेठ जी तुम्हें तो यह छल्ला उसी तरह से सुलझा देना पड़ेगा।' सो ज्यों ज्यों वह सुलझाये त्यों त्यों ही वह उलझता जाता था। यों सारा समय व्यतीत हो गया और चपरासी ने निकाल बाहर किया। सेठ फिर पछताता हुआ राजा के पास पहुँचा, बोला—'महाराज आज भी मेरा समय गोरखधंधे में ही व्यर्थ चला गया, कुछ न ला सका, कृपा कर एक बार और कुछ खजाने से लाने का आदेश दे दीजिये। तो इस बार राजा

बोला—'अच्छा देखो तुमको यह अन्तिम मौका दिया जा रहा है। अब इसके बाद मौका नहीं दिया जायेगा। कल के दिन तुम तांबे के खजाने में जाना उन्हीं दो घन्टों में जितना चाहो तांबा ले जाना। जब सेठ चौथे दिन फिर पहुंचा तो वहां क्या देखा कि एक स्प्रिंगदार सुन्दर कोमल गद्देदार पलंग था। उसे देखकर उसके मन में आया कि अभी तो काफी समय है, जरा इस पलंग पर दो चार मिनट को लेटकर देखें तो सही कि कितना अच्छा लगता है। सो ज्यों ही लेटा कि नींद आ गई। सो गया। समय व्यतीत हो गया, और चपरासी ने निकाल बाहर किया। तो देखिये—जैसे सेठ ने सारे श्रम किये पर खेल खिलौनों में घोड़ों की सवारी में, गोरख धन्धों में और पलंग पर लेटने में अपना सारा समय गंवा दिया, लाभ कुछ न पा सका, इसी प्रकार यह संसारी प्राणी भी इस दुर्लभ मानव जीवन की चार अवस्थाओं में व्यर्थ के ही कार्यों में पढ़कर अपना सारा जीवन व्यतीत कर लेता है, लाभ कुछ नहीं पाता। बचपन की अवस्था खेल खिलौनों में व्यतीत कर देता है, कुमार अवस्था के समय वाहनों में चढ़ने घूमने में व्यतीत कर देता है, फिर यौवन अवस्था में शादी होने पर गोरखधंधे में समय बीतता है। उसमें ही उलझा रहता है और वृद्धावस्था में पलंग पर लेटा लेटा अपना समय व्यतीत कर देता है। अरे इस मनुष्य भव को पाकर कुछ न कुछ शक्ति प्रमाण तप को स्वीकार करो। जिस प्रकार वात पित्त कफ आदि का प्रकोप नहीं हो, परिणामों में उज्वलता बनी रहे और तन में उत्साह बदलता रहे ऐसा तपश्चरण करना चाहिये। बालक वृद्ध धनि निर्धन सबल निर्बल आदिक सभी को यथाशक्ति तप अवश्य करना चाहिये। तप से ही इस जीव का कल्याण है। काम, निन्द्रा, प्रसाद आदि को नष्ट करने वाले तप ही हैं। संवर निर्जराका प्रधान कारण तप ही है। तप का अत्यन्त प्रभाव है। त्रैलोक्य में तप के समान कोई अन्य वस्तु नहीं है।

अब देखिये—जैसे एक जगह किसी कवि कहा है ना कि
'दोउ काम नहिं होत सयाने, विषय भोग अरु मोक्षहु जाने ॥'

अर्थात ऐसा न हो सकेगा कि यहां की इन मायामयी चीजों में रमते भी रहें, यहां की मौज भी लूटते रहें और हमारा कल्याण भी हो जाय। यदि जीवन में कुछ आगे बढ़ना है और अपने जीवन को सफल बनाना है तो इस तपश्चरण को अंगीकार करना होगा। इस तपश्चरण के द्वारा ही सारी कलुषताओं को, विकार भावों को समाप्त किया जा सकता है। इस दुर्लभ मानव जीवन को पाकर श्रेष्ठ कर्तव्य यही है कि तत्व का मनन करें तथा तप में उद्यमी रहें। यह आयु तो क्षण क्षण में बीती जा रही है। जैसे नदी से गिरने वाला पानी नीचे बह गया तो फिर पुनः लौट कर नहीं आता इसी प्रकार जीवन का जो समय बीत गया वह लौटकर पुनः नहीं आता। अतः ऐसा जानकर शीघ्र ही यथासम्भव इस तपश्चरण धर्म का पालन करें और अपना यह दुर्लभ मानव जीवन सफल करें। द्यानतराय जीने निम्नपंक्तियां तप के सम्बन्ध कितनी सुन्दर कही है।।

तप चाहे सुरराय, करम शिखर को बजर है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करे निज शक्तिसम ॥
उत्तम तप सब माहीं बखाना कर्म शिखर को बजर समाना।
बस्यो अनादि निगोद मंझारा, भू विकलत्रय पशु तन धारा।
धारा मनुषतन महा दुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता।
श्री जैन वाणी तत्व ज्ञानी भई विषयउपयोगता।
अति माह दुर्लभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरें।
नरभव अनूपम, कनक धर पर मणिमई कला धरें।

(ओंम ह्रिं श्री उत्तम तप धर्मागय नमः)

(३)

मगर जो तप महाबली कर रहे थे वह इस उद्देश्य नहीं बल्कि स्वार्थ था, इस कारण अमर भगवान पार्श्वनाथ ने उसका अना-

दूर किया तो यह कोई अवांछनीय बात न थी। मगर महावली ने तो युद्ध होना अपना अधिकार समझा था। उसमें कुछ आदी हो हो गया था। उधर उसने जो चारों ओर आग जला रखी थी वह बूझने लगी। उस बुझी आग को पुनः प्रजल्लित करने के लिये उसने अपना मजबूत फरसा उठाया। और एक पेड़ को काटने लगा।

'ठहरो।'

'क्या ठहरो।'

'रुकिये श्रीमान।'

'मुझे रोकने वाले तुम कौन ?'

'मैं नहीं रोक रहा हूं। रोक रहे हैं इसके अन्दर रहने वाले जीव।'

'जीव।'

'हां।'

'कैसे जीव ?'

'इसमें जी हैं। एक नहीं दो।'

'यह झूठ है।'

भगवान पार्श्वनाथ को तो अवधिज्ञान था, इस कारण उन्हें अवधिज्ञान के कारण मालूम था कि इस पेड़ में सर्प और सर्पिणी के दो जीव हैं जो अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे।

मगर महावली तो क्रोध से और अहं से उबल रहा था। उसने भगवान पार्श्वनाथ की बात को ध्यान से नहीं सुना। झट से फरसे से पेड़ काट डाला। लकड़ी के काटते ही सांप और सर्पिणी के शरीर कट गये।

भगवान पार्श्वनाथ (सुभौम कुमार) ने कहा—'आप अपने आपको गुरू और तपस्वी समझ रहे हो। मगर वह आपका तप नहीं कुकर्म है। कुकर्म से पाप आश्रव होता है, इस विषय में इन्कार नहीं किया जा सकता। आप आपने इस अज्ञान से भरपूर

तप से इस लोक में ही दुख भोग रहे हो, परलोक में भी दुख ही भोगोगे।'

महावली—'मैं।'

सुभोमकुमार—'जी हां आप।'

महावली—'जानता है मैं कौन हूँ ?'

सुभोमकुमार—'आप···।'

महावली—'मैं प्रभ हूँ।'

सुभोमकुमार—'अच्छा।'

महावली 'हां क्या पचाग्नी तप सहज होता है। आंच के बीच केवल वायु भक्षण करके जीवित रहना। चिरकाल तक एक ही पांव से खड़ा रहन। उपवास रखना और केवल गिरे हुये ही पत्ते खाना, तप का सरल है। इससे बड़ा तप कोई हो ही नहीं सकता।

सुभोम कुमार—'जी···।'

महावली—'तुम हंस रहे हो।

सुभोम कुमार—'हां।'

महावली मेरा उपहास कर रहे हो। मैं गुरू हूँ। गुरू का अनादर करना जानते हो कितना पाप होता है।'

सुभोम कुमार बोलें—'सुनो। न तो मैं अपका तिरस्कार करता हूँ, और न आपको गुरू मानता हूँ। जो आत्म और आगम को छोड़कर मिथ्या तत्व और क्रोध, मान, माया लोभ आदि चार कषायों के वशीभूत हैं पृथ्वी कयक जीवों की हिंसा में मन वचन काल और मृत, भक्ति एवं अनुमोदनी से प्रवृति करते है और इस प्रकार अनतम के कहे हुये मत का आश्रय लेकर निर्वाण की प्रार्थना करते हैं और मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं। उनकी यह इच्छा इसी प्रकार है जैसे कोई धान के छिलके कूट कर चावल प्राप्त करना चाहे अथवा पानी को मथ कर कोई घी

प्राप्त करना चाहे। जिस प्रकार अंध पाषाण को कितना ही जलाया जाये वह सोना नहीं बन सकता और कोई अन्धा व्यक्ति यदि आंख मूंद कर जंगल की आग में यह सोच कर कूद पड़े कि वह बच जायेगा। मगर क्योंकि यह स्पष्ट है कि वह बच नहीं सकता।'

'महाबलि तुम उपदेश दे रहे हो।'

'सुभोम कुमार नहीं मैं केवल स्नेहवश कह रहा हूँ। आपके प्रति मेरा अपार स्नेह है इसी के कारण कह रहा हूँ।'

'महाबलि तुम झूठ कह रहे हो।'

'सुभोम कुमार नहीं ...।'

'महाबलि तुम मेरा निरादर कर रहे हो।'

सुभोम कुमार नहीं।'

'महाबलि तुम...।'

'सुभोम कुमार आप कुछ नहीं समझ सकते।' सुभोम कुमार भगवान पार्श्वनाथ ने यह बात वास्तव में सच कही थी। क्योंकि शास्त्रों का मत है कि दुर्बुद्धि व्यक्ति अपने कर्मों के पूर्वा ग्रहों के कारण अपनी अच्छाई बुराई नहीं समझ सकता।

वह क्रोध से फुंकार रहा था।

गुस्से से उसका मन जल रहा था।

अहंकार ने उसे बरबस कर दिया था। और वह इस आग में अपने कर्मों में स्वयं फंसता चला जा रहा था।

शास्त्रों में आठ प्रकार का मद बतलाया गया है—

१. पितृ मद
२. मातुल मद
३. रूप मद
४. जान मद
५. हान पद
६. वल मद

७. तप मद

८. प्रभुता मद

महाबली का मान भी यही था। सुभोम कुमार ने उसका मान भंग तो कर दिया. मगर जैसा कि शास्त्र स्वीकार करते हैं कुबुद्धि आदमी अपने कर्मों के बल पर कुछ भी मानने से अस्वीकार कर देता है। जिस प्रकार शराब पिया व्यक्ति सर्प को ही रस्सी समझ कर उस पर लटक जाता है, उसी पर महाबली ने भी अपने मन से इन पांच तिनकों को निकाल फेंका था—

१. ज्ञान विनय

२. दर्शन विनय

३. चरित्र विनय

४. तप विनय

५. उपचार विनय

और इस प्रकार उसका समस्त जीवन निरर्थक कार्यों में व्यतीत होता रहा, और अपने मान भंग को अपने मन में रखकर मरा। इस लोक में तो दुख भोगता ही रहा, परलोक में भी दुख भोगे।

वह संवर नाम का ज्योतिषिदेव भी बना ! जिसकी कथा आगे आयेगी। उसने झूठा मान कर तप के बावजूद गति नहीं पाई और अगले भव में भी वह क्रोध एवं प्रतिशोध की आग में भुनता रहा। जबकि इसके बावजूद जब वह फरसे से पेड़ काट रहा था तो भगवान ने सर्प और सर्पणी को णमोकार मन्त्र सुनाया। जिसके कारण वे मर कर स्वच्छ गति में आये और धरणेन्द्र एवं पद्मावती बने।

९ अयोध्या की विभूति और तीर्थंकर कर्म का बंध

भगवान पार्श्वनाथ जब तीस वर्ष के हुए तो एक दिन उनके मन्त्री ने आकर बतलाया कि अयोध्या से एक दूत आया है।

—'अयोध्या !'

'हां !'

'मगर वहां का राजा तो जयसेन है न।'

'जी हां ! उसने आपको उपहार में मगली देश में पैदा हुए घोड़ों का उपहार भेजा है।'

'स्नेह की भेंट हमें स्वीकार है।'

'जी श्रीमान !'

'राजदूत को उचित सम्मान दिया जाये।'

'ऐसा ही होगा।'

'हम स्वयं उनसे मिलेंगे !'

'यह आपका गौरव है महाराज कुमार ! अपितु राजदूत इतने सम्मान के अधिकारी नहीं होते।'

'हम सम्मान नहीं स्नेह देंगे। राजदूत को उचित सम्मान और गरिमा के साथ ले आया जाये।'

'जो आज्ञा !'

राजदूत।

उसने न मालूम कितने राजाओं और राज्यों के यहां अपने देश का प्रतिनिधित्व किया था। मगर इतनी उदारता, इतना सम्मान, उसने कहीं नहीं देखा। वह कृत्य कृत हो गया। भगवान

पार्श्वनाथ ने कहा—'आओ भद्र मित्र ।'

'जी ।'

'हम आपके आगमन से बड़े प्रसन्न हुए ।'

'यह मेरा गौरव है महामान्य ।'

'अयोध्या नरेश तो अच्छे हैं ?'

'जी हां ! भगवान ऋषभ देव की कृपा से अयोध्या की समस्त विभूति विद्यमान है श्री मान जी सब ओर प्रसन्नता और आत्मीकता की झलक है । तीर्थंकर भगवान रिषभ देव सबका कल्याण करते हैं ।'

'भगवान रिषभ देव !'

'जी महामान्य ।'

'तीर्थंकर रिषभ देव ।'

'जी आदरणीय हैं !'

'भगवान रिषभदेव ।'

दूत सकपका गया—'बोला मुझसे कुछ भूल हुई क्या ?'

'नहीं ।'

'कोई अपराध ।'

'नहीं···नहीं ।' उत्तेजित से भगवान पार्श्वनाथ ने कहा—'आप हमें एकांत में छोड़ दें। महामन्त्री आपकी सुख सुविधा की व्यवस्था करेंगे ।' कहकर पार्श्वनाथ एकान्त में बैठ गये सोचने लगे

(२)

भगवान रिषभदेव ।

अयोध्या ।

तीर्थंकर भगवान रिषभदेव ।

सोचने लगे—'मुझे भी तीर्थंकर का बंध हुआ था । मेरे भव मेरा अतीत और मैं···मैं···

उन्हें याद आने लगा ।

उनका अपना अतीत सामने आने लगा ।

मरूभूति—

हां उनका नाम मरुभूति था कभी ।

विश्वभूति उनके पिता थे और असुन्दरी उनकी माता ।

उनकी स्त्री का नाम था वसुन्धरी ।

और कमठ की स्त्री थी वरुणा ।

कमठ और मरुभुति ।

दोनों राज मंत्री थे । मगर कमठ । उसकी नजर वसुन्धरी पर थी वह वसुन्धरी को अपनी पत्नी बनाना चाहता था ।

कषाय ने उसका मन कलुषित कर दिया था ।

पाप ने उसको घेर लिया था ।

दुष्कर्म करने पर वह उतारू हो रहा था और उसका परिणाम भोग रहा था मरुभूति ।

षड़यंत्र और षड़यंत्र ।

भाई भाई का वैरी ।

वह भी केवल वासना के लिये । कमठ ने मरुभूति को मरवा डाला । वह दृश्य उफ सब याद आ रहा है ।

एक एक घटना याद आ रही है ।

मरुभूति को मरना पड़ा । कषाय का यही परिणाम होता है उसकी नीति, उसके आचार विचार पर नीच और दुराचारी कमठ का प्रहार हुआ और उसे मनुष्य गति छोड़नी पड़ी । मरुभूति हाथी बना ।

वजरघोष हाथी ।

और हथनी बनी वरुणा ।

गति थी त्रियंच ।

विशाल अरण्य और उसमें वे दोनों क्रीड़ा करते थे वजरघोष को कुछ याद नहीं आ रहा था ।

मगर एक दिन…

जब एक मुनि प्रतिमा योग पर विराज मान थे और वह क्रीड़ा में भंग होने के कारण क्रोध से पागल हो रहा था । उसके ललाट और कपोल से मद भर रहा था । तो उसे अचानक याद

आया ।

पिछला भव ।

वह मरुभूति ।

और यह मुनि नहीं, तब थे ये पोदनपुर के नरेश अरविन्द कितना स्नेह करते थे ये ।

उसका सदाचार, उसकी नीति से कितना नेह था ।

वह नेह—

वही नेह उसे रोक रहा था ।

वजरघोष रुक गया ।

मुनि अरविन्द ने हाथी को देखा । उसमें उन्हें उनका अपना योग्य मंत्री मरूभूति याद आया ।

और उसे उन्होंने धर्मोपदेश दिया ।

वजरघोष ने श्रावक के व्रत धारण किये ।

प्रोषधोप वास करके उसका मन कुन्दन जैसा निखर आया । अब वह पाप से डरता था । डरता था हर दुष्कर्म से ।

वह केवल हाथियों के समूह का बचा जल पीता था ।

वह सिर्फ सूखे पत्ते खाता था ।

तपस्या भरा जीवन ।

संयम भरा जीवन ।

मगर शरीर । उसे तो दुर्बल होना ही था, उसे कमजोर पड़ना ही था । जन्म जरा और मृत्यु के संवेग ने उसे फिर मृत्यु के निकट धकेल दिया था पानी की दलदल में फंसा जब निकलने का प्रयास कर रहा था तो दुराचारी कमठ का जीव कुर्कुट सांप बन कर उसे काटने को तैयार था ।

हाथी वजरघोष को मरना पड़ा । मगर अपने किये कर्मों के अनुसार सहस्त्रार स्वर्ग में सोलह सागर की आयू वाला देव बना । और वहां के पथ पर सुख भोग कर त्रिलोकत्तम नगर के राजा विद्युत गति और रानी विद्युत माला का रश्मि वेग नामक पुत्र बना ।

रश्मि वेग...

मरुभूति से वजरघोष और इसके बाद रश्मि वेग।

रश्मि वेग जब यौवन की सीढ़ियों पर थे तो उन्होने अपना जन्म सफल करने की सोची।

जीवन सफल करने के लिये उन्होंने समाधिगुप्त मुनिराज से दीक्षा ली और हिमगिरि की गुफा में योग साधन किया।

पूर्व जन्म का वैरी कमठ !

सांप अब अजगर की योनि में आ गया था ? इस बीच वह प्रभा नामक नरक में नारकीय यासना भी भोग आया था।

मगर जिसका मन बुद्धि से विवेकहीन हो जाये, उसे संसार का कोई दुख या सुख विचलित नहीं कर सकता।

कमठ का जीव अब अजगर बन गया था।

उसने रश्मि वेग नामक मुनीराज को देखा तो क्रोध की ज्वाला दहक उठी। और प्रतिशोध की आग में वह मुनी को निगल आया।

मगर—

भारतीय सिद्धान्त और जिन शास्त्रों के अनुसार कोई जीव शरीर को समाप्त कर सकता है कोई आत्मा को समाप्त नहीं कर सकता। इसे न तलवार काट सकती है न पानी गला सकता है न आग जला सकती हैं और न हवा सूखा सकती है केवल बाध्य किया जा सकता है तो केवल शरीर परिवर्तन और मृत्यु का है—

निर्णात्रि वामसि यथा विहाय

(अर्थात जिस प्रकार मनुष्य फटे कपड़े तार कर नये कपड़े धारण कर लेता है उसी प्रकार मर कर यह आत्मा नया जीव नई गति और नयी योनि नया शरीर को धारण कर लेती है।

रश्मि वेग को भी नया जीवन मिला।

अच्युत स्वर्ग।

पुष्कर विमान।

कितने ही सागर वाली आयु ?

और इन वैभव से भरे सुखों को भोगकर जब वह पुनः विपद्य नाम नगर के राजा वज़रवीर्य और रानी विजया का यशस्वी वजर नाभि चक्रव्रति राजा वना तो उसे इस जीवन में आशा की एक किरण दिखलाई दी थी।

श्री १०८ क्षेमंकर मुनि

उन्होंने उन्हें जीवन का तप समझा था। उन्हें बतलाया था कि जीवन का एक ही ध्येय है और वह है इस आवागमन से छुटकारा।

और यह छुटकारा मिल सकता है अष्ट कर्मों के छुटकारे से इसके लिये आवश्यक है—

१. सच्चादर्शन।

२. सच्चा ज्ञान।

३. सच्चा चरित्र।

इसके लिये जरुरी है कि प्राणी इन सभी से बचे—

आठ कर्म

१. ज्ञान वरणी	२. दर्शनावरणी
३. मोहनीय	४. अन्तराय
५. वेदनीय	६. नाम
७. गोत्र	८. आयु

और बतलाये थे वे नियम जो प्राणी मात्र को कर्म के बंधनों से मुक्त करते हैं।

उन क्षेमकर महारज को नमस्कार।

उन्होंने तो उन्हें सोलह कारण भावनाओं को अपनाने के लिये बाध्य किया था। ग्यारह अंगों का सरल अध्ययन विशुद्धि-करण !

और इसका परिणाम था।

तप, तप : घोरतप।

तपश्चरण से प्राप्त हुआ था तीर्थंकर नाम का बंध।

उन्होंने निष्पृह भाव से समस्त राज की संपदा और भोग छोड़कर तप धारण किया था।

चारों आराधनाएं कीं।

चिर काल तक घोर तप।

मगर यहां भी पापी कमठ ने पीछा नहीं छोड़ा था। वह अजगर की त्रियंच गति में गया था। जहां से वह सिंह बन गया था और क्षीर वन में जाकर रश्मि वेग को पकड़ लिया था।

मुनि रश्मि वेग उस समय प्रतिमा योग में थे।

ध्यानस्थ स्थिति थी।

मगर शेर ने उन्हें जकड़ा तो पकड़ता ही चला गया।

शेर ने उनकी गरदन पकड़ ली थी।

परिणाम यह हुआ कि मुनि रश्मि वेग को शरीर छोड़ना पड़ा।

वे उस समय धीर वीर, धर्म ध्यान के आधीन थे। अन्त-आत्मा शान्त हो गई थी। मन आकुलता रहित था। प्राण रहित होकर उसे फिर स्वर्ग जाना पड़ा।

अच्युत स्वर्ग।
प्राणत विमान।
देव श्रेणी—इन्द्र।
आयू : वीससागर।
ऊंचाई : साढ़े तीन हाथ।
लेश्या : शुक्ल
श्वास अवधि : दस माह।
मानसिक आहार अवधि : वीस हजार वर्ष।
अवधि ज्ञान का विषय : पांचवे।
विक्रया और वल : नरक तक।

इतना सुख, इतनी रिद्धि, इतनी सिद्धी सब समाप्त हो गई सब कुछ मिट सा गया। जब यह सब नहीं रहा तो यह राजपाट कैसा। यह सब किस काम का। सब कुछ व्यर्थ है फिर इस राज

का क्या मूल्य । इस नाशवान शरीर का क्या मूल्य । नौ हाथ ऊंचा शरीर, लक्ष्मीवान, समस्त लक्षणों से सुशोभित यह शरीर इसी धरती में, पंचतत्वों का शरीर पन्चतत्व में मिल जायेगा । फिर ऐसे शरीर का ऐसे राजपाट का क्या ?

यदि ज्ञानावरण कर्म के बढ़ते हुए क्षयोपशम के वैभव से उन्हें आत्मज्ञान प्राप्त हो गया ।

अब राज नहीं ।

राज वैभव नहीं ।

जीवन सुख नहीं ?

अब होगा आत्म सुख ।

एक दिवस शुभ करम योगते क्षेमंकर मुनि वन्दे ।
देखे श्री गुरू के पद पंकज लोचन, अलि आनन्दे ।।
तीन प्रदक्षिना दे शिर नाये । सुन राजा वैरागी ।
राज्य रमा वनिता टिब सारे वेरस निरस लागी ।।

बैराग्य भावना कवि द्यानत राय जी

आत्मा का सुख केन्द्रित करके सम्भवतः उन्होंने अपने भक्तों को यह कहने का अवसर दिया था ।

आनन्द को कन्द किधों पूनम का चन्द कीधों
देखिये दिनंक ऐसो नन्द अश्वसैन को ।
करम को हरै फंद भ्रम को करे निकेद
चूरैं दुख द्वन्द सुख पूरे महा चैन को ।
सेवत सुरिंद्र गुण गावत नारिंद भैय्या
ध्यावत मुनिंद तेहू पावै सुख पाने को ।
ऐसो जिन चन्द करे छिन में सुघन्दसु तो
ऐक्षित को इन्द्र पार्श्व पूज्यों प्रभु जैन को ।।

(संदर्भ—प्रति क्षेत्र पार्श्वनाथ स्तूति ब्रह्म बावनी से उद्धत भगवती दास 'भैया' कृत स्तूति

७ दीक्षा लक्ष्मी और कमठ का उपसर्ग

भगवान पार्श्वनाथ के विषय में आचार्य गुणभद्र ने उत्तर पुराण में शुरूआत करते हुये कहा है:—

धरनेन्द्र और भक्तिवष पदमावती के द्वारा किया हुआ छत्र धारण इन दोनों का निषेध जिनकी केवल महिमा से ही हुआ था वे पार्श्वनाथ हम सबकी रक्षा करें। अर्थात समस्या के समय भगवान और पार्श्वनाथ के ऊपर कमठ के जीव ने जो उपसर्ग किया था, उसका निवारण धरणेन्द्र और पदमावती ने किया था परन्तु इसी उपसर्ग के बीच उन्हें केवल ज्ञान हो गया, उसके प्रभाव से उनके सभी उपसर्ग दूर हो गये और उनकी महिमा और भी बढ़ गई। हे प्रभू, आपकी धर्म कथा कुमार्ग का निवारण और सन्मार्ग का प्रसारण करने वाली है।

आगे ग्रन्थाचार्य ने इस पावन कथा को बढ़ाते हुए कहा है:—

'सुरम्य नाम का बड़ा भारी देश है। उसमें बड़ा विस्तृत पोदनपुर नगर था, जिसमें राजा अरविंद का शासन था। उसी के राज्य में विश्वभूति नामक ब्राह्मण रहता था।

इस कथा की चर्चा कर चुके हैं। आइये चले उस संसार में जहां कुमार पार्श्वनाथ का दीक्षा लक्ष्मी का वरणन कर रहे थे। अपने पूर्व जन्म और तीर्थंकर नाम के बंध से उन्हें अवधिज्ञान था, जिसके कारण उन्होंने अपने पूर्व जन्म को जान लिया था। उन्हें मतिज्ञान के बढ़ते हुए क्षयोपशम के वैभव से आत्मज्ञान प्राप्त हो गया था। संयम हो जाने के कारण उनकी राजपाठ से विरिक्ति हो गई थी और इस विरक्ति से क्योंकि वे संसार की

सबसे महानविभूति बनते जा रहे थे इसलिये स्वभाविक था कि चहुं ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

(२)

प्रसन्नता की बात भी थी ही। उस युग के महान तीर्थंकर अपने पथ पर अग्रसर हो रहा था।

विरक्ति का भी अपना समारोह होता हैं, जिसमें कलुषता के स्थान पर पवित्रता और वैभव के स्थान पर सादगी अपना स्थान लेती है।

वैसी ही सादगी विराजमान हो गई।

दीक्षा कल्याण का उत्सव मनता रहा।

इस विषय में कहा गया है:—

पार्श्वनाथ तीस वर्ष तक कुमार रहे। फिर उन्होंने पोष कृष्ण एकादशी के दिन प्रातःकाल के समय, तीन सौ राजाओं के साथ वीतरागी जिन दीक्षा ली चार माह तक छद्मस्थ अवस्था में बिहार करते रहे तदुपरान्त राम नगर के पास अहिक्षेत्र में देवदास वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ होकर बैठ गये।)

१– इस विषय में, अनेक मत पाये जाते है। इसलिये हमने यह ही उचित समझना है। कि भगवान पार्श्वनाथ को उपसर्ग अहिक्षेत्र में ही हुआ है।

भगवान की दीक्षा लक्ष्मी का वर्णन करते हूए कहा गया है कि जैसे ही उन्हें मतिज्ञानावरण कर्म के बढ़ते हुये क्षयोपशम वैभव से उन्हें आत्मज्ञान प्राप्त हो गया, तब ही लोकोंत्तिक देवों ने आकर उन्हें सम्बोधित किया। उसी समय इन्द्रादि-देवों ने आकर प्रसिद्ध दीक्षा कल्याणक का महोत्सव मनाया।

तदन्तर भगवान विश्वास करने योग्य युक्ति युक्त वचनों के द्वारा भाई बन्धु को विदा कर विमल नामक पालकी पर सवार होकर विश्वनामल वन में पहुंचे। वहां अतिशय धीर वीर भगवान बेला का नियम लेकर एक बड़ी शिला बल पर उत्तर की ओर मुंह करके बैठ गये। वे छपासन विराजमान थे।

इस प्रकार पोष कृष्ण एकादशी के दिन प्रातः काल के समय उन्होंने सिद्ध भगवान को नमस्कार कर तीन सौ राजाओं समेत

दीक्षारूपी लक्ष्मी स्वीकार कर ली।

(३)

दीक्षा लक्ष्मी।

एक कार्य था, संसार से आवागमन की युक्ति का कार्य : अगर इस कार्य को विवाह की संज्ञा दी जाये, युक्ति को वधू के रुप में स्वीकारा जाये तो कहना होगा दीक्षारूपी लक्ष्मी उस तक पहुंचने का आह्वान प्राप्त थी।

भगवान ने अपने केशों का लोच स्वयं किया।

पांच मुट्ठियों में अपने वाल उखाड़ फेंके।

उन वालों को इन्द्र ने उठाया। आदर से उनकी पूजा की और फिर उन्हें क्षीर सागर में प्रवाह कर दिया।

दीक्षा लेते ही भगवान ने सम्यक चरित्र प्राप्त किया और इस चरित्र के प्राप्त करने के कारण वे विशुद्धता के कारण चौथे मनः फयर्च ज्ञान से भूषित हुए। उनका तेज कैसा था यह निम्न स्तुति गीतों से प्रस्तुत है—

(१)

मुखमयंक अवलोकि, रंक रजनीपति लाजै।
नाम-मंत्र परताप, पाप पन्नग डर भाजै।
जय अश्वसेन कुलचन्द जिन, शक्र-चक्र पूजत चरन।
तारो अपार जलधि ते, तुम तरंड तारन तरन॥
बाघ सिंह वश होंहि, विषम विषधर नहि डंकै।
भूत प्रेत वैताल, व्याल वैरी मन नहि शंकै।
शोकिनि डाकिनि अगिनि, चोर नहिं भय उपजावै॥
रोग शोग सब जांहि, विघन मेरे नहिं आवैं।
श्री पार्श्वदेव के पद कमल, हिये धरत निज एक मन।
छूटै अनादि बंधन बंधे, जौन कथा विनसै विघन॥

(बुधजन कृत पार्श्वपुराण)

(२)

रे मन भज-भज दीनदयालु,

जाको नाम लेत इक छिन मैं, कटैं कोट अघ जाल । रे मन. ।
इन्द फनिन्द चक्रधर गावैं, जाको नाम रसाल ।
जाको नाम ज्ञान परकासै, नासै मिथ्या जाल । रे मन. ।
जो को नाम समान नहीं कछु उरध मध्य पाताल ।
साई नाम नमो नित द्यानत छोड़ि विषम विकराल । रे मन. ।
(द्यानत राय)

(३)

पारस जिन चरन निरख, हरष यों लहायो ।
चितवन चन्दा चकोर ज्यों, प्रमोद पायो ॥ टेक ॥
ज्यों सुन घनघोर शोर, मोर हर्ष को न छोर ।
रंक निधि समाज राज पाय मुदित थायो ॥ पारस० ॥
ज्यों जन चिर छुधित कोय, भोजन लखि सुखित होय ।
भेषज गदहरन पाय, सहज सुहरषायो । । पारस० ॥
वासर भयो धन्य आज, दुरित दूर परे भाज ।
शांत दशा देख महा, मोहतम पलायो ॥ पारस० ॥
(दौलतराम, दौलतपद संग्रह)

अर्थात : भगवान पार्श्वनाथ मुखचन्द्र देखकर बेचारा इन्द्र घबरा जाता है : उनके नाममात्र है मन्त्र के प्रताप से पाप रूपी नाग डरकर भाग जाता है ।

अर्थान्तर : पार्श्वनाथ का नाम जपने में इतना बल है कि उनसे पाप टिक नहीं पाते ।

अत : बनारस के महाराजा अश्वसैन के कुल के लिये चन्द्र के समान, जिनेन्द्र पार्श्वनाथ की जय हो । उन पार्श्वनाथ जिनकी चरणों की पूजा इन्द्र आदि करते हैं ।

प्रभू जीवों को इस भव सागर से तारने में अपार समर्थ हैं । अतः मुझे भी इस सागर से पार लगा दो न प्रभू···

तुम्हारी कृपा से वाघ और सिंह वश में हो जाते हैं । भयंकर नाग डस नहीं पाते ।

भूत प्रेत वेताल शाकिनि, डाकिनी और नागिनी तथा चोरों

का भय नहीं रहता । रोग शोक सब भाग जाते हैं । व्यसन निकट नहीं आते ।

जो पार्श्वदेव के चरण कमलो को एकासन होकर धारण करता है, उन पार्श्व देव की महान् अनुकम्पा से अनादिकाल के बन्धन छूट जाते हैं, उनकी कृपा से विघन नष्ट हो जाते हैं।

अरे मन से तू बार-बार उस पार्श्वनाथ को ही भज न जिस का नाम लेते ही क्षण मात्र में करोडों पाप के चक्र कट जाते हैं। जिसके रस भरे नाम को इन्द्र और धरणेन्द्र और चक्रव्रती अर्थात् वे नरेश जिनका चक्रव्रती राज है, वे भी भगवान की शरण में जाते हैं । भगवान पार्श्वनाथ का स्मरण ज्ञान प्रदाता है और मिथ्या जाल नष्ट हो जाता है। इसके नाम के समान पृथ्वी आकाश और पाताल में कोई भी नहीं है। कविद्यानर राय का कथन है भयानक विषय वासनाओं को छोड़कर मैं उन ही का नाम प्रतिदिन जपना चाहता हूँ।

ऐसे भगवान की दीक्षा समारोह का क्या कहना। दीक्षा लक्ष्मी तो उन्हें मोक्ष का वरदान देने आई थी।

(४)

दीक्षा समारोह समाप्त हुआ।

अब शुरू हुआ पारणा (आहार)।

कल तक जो साधुओं को आहार देते थे, आज स्वयं आहार करने निकले हैं। भगवान की विनम्रता देखते ही बनती थी।

भगवान आहार लेने के लिये नगर की ओर रवाना हुए।

जनता अपने बीच तीर्थंकर को पाकर निहाल हो उठी।

और जहां-जहां भगवान के चरण पड़े वहां दूर-दूर तक पावनता व्यठिगता और शुद्धता फैलती गई।

नगर का नाम : मुल्म खेर।

श्याम वर्ण का राजा धन्य।

भगवान ने जब मुनि का रूप धारण कर लिया था।

अब उनके लिये राजा प्रजा, ऊंच नीच सभी एक समान थे।

वह राजा श्याम वर्ण का था भगवान पार्श्वनाथ ने आहार प्राप्त किया और उसे उपकृत किया।

अब समय आया एकान्त वास।

जिस वन में जाकर भगवान ने दीक्षा ग्रहण की थी वहीं जाकर वे देवदारन वृक्ष के नीचे विराजमान हो गये।

वे तेला का नियम लेकर बैठे थे।

सात दिन का व्रत था। मगर अभी तो कई व्याधियां आनी थी वही कमठ का जीव मरुभूति का भाई कुकुंट सांप अजगर और सिंह के रूप उन्हें डसने वाला कमठ अब संवर नामक का ज्योतिषी देव बन गया था और विमान द्वारा आराम से कहीं जा रहा था कि अचानक उसका विमान रुक गया। उसे याद आया कि यह तो वही है जिन्हें वह कितनी बार मार चुका है।

उसका मन फिर क्रोध से उबलने लगा था।

उसने पहले तो महागर्जना की और फिर भयंकर वृष्टि करनी शुरू कर दी। सात दिन तक वह दुष्ट तरह तरह के उपसर्ग करता रहा।

पहले गर्जना—

फिर वर्षा।

इसके बाद उसने छोटे मोटे पहाड़ों को उनके निकट गिराना शुरू किया।

भगवान निश्चित बैठे थे।

और वे सांप सांपनि जो उनके निर्मल उपदेश से महाबली के हाथों मर कर धरणेन्द्र और पद्मावती बन गये थे। वे धरती से बाहर आ गये और धरणेन्द्र जिसके फन पर रत्न चमक रहे थे उसने भगवान पार्श्वनाथ को सब ओर से घेर कर अपनी घटनाओं से ऊपर उठा लिया और उसकी पत्नी वजरमय छत्र तान कर खड़ी हो गई।

यह एतिहासिक घटना उस वक्त घटी जब भगवान ध्यानावस्था में थे। इतिहास कारों का मत है कि यह घटना ग्राम राम नगर जिला नेग्ली तहसील आंग्ला के वन में हुआ था, जिसके विषय में डा० प्रेम सागर जैन ने अपने एक लेख में लिखा है।

सात दिन तक उसके उपसर्गोका प्रवाह चलता रहा। जब उसने पर्वतों के टुकड़ों को गिराना आरम्भ किया, धरणेन्द्र पद्मावती के साथ आया और अपना फण उनके सिर पर तान दिया। यह देख कर उपद्रवी भाग गया। इस सम्बन्ध में स्वम्भू स्त्रोत का एक भाव-पूर्ण श्लोक है—

संस्कृत बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं
स्फुरत्तडित्पिग रुचोपसर्गिणाम् ॥१॥
जगूह नागो धरणो धराधरं
विरागसंध्यातडिदम्बुदो यथा ॥२॥

दैव्य कियो उपसंग अपार, ध्यान देख, प्रत्यो फणधार।
गयो कमठ शठ मुख कर श्याम, नभोमेरुसम पार्श्व स्वाम ॥

ध्यानअवस्था में पार्श्वनाथ के दो प्रबल शत्रु थे—एक शम्बर नामका ज्योतिषि देव और दूसरा मोह। पहला बाह्य था और दुसरा भ्रान्तरिक। पहले का अवरोध सम्भव था दूसरे का नहीं। दूसरा दुर्जय माना जाता है पहले का निदान धरणेन्द्र पद्मावती ने किया और दूसरे का पार्श्वनाथ ने स्वय अपने योगरुपी खड्ग की तीक्ष्णधार-से दूसरा मुख्य है, पहला गौण। भिन्न प्रसंग में दोनों का महत्व है। पार्श्वनाथ ने केवल-ज्ञान की प्राप्ती से उस अरहत पद को प्राप्त किया, जो अचिन्त्य है, अद्भुत है और त्रिलोक की पूजा के अतिशयका स्थान है।

स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया
निशात्य यो दुर्जयमोहविद्विषम्।
अवापदार्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं
त्रिलोकपूजातिशयास्पद पदम् ॥

आर्हंत पद पाकर वे सत्तर वर्ष तक भारत के भिन्न भिन्न

स्थानों में विहार करते रहे। काशी, कौशल, पांचाल, मरहटा, मारू, मगध, अवंती और अंग वंग आदि का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है। उनके धर्मोपदेश से जन २ लाभान्वित हुआ। विहार, बंगाल और आसाम की आदि जातियों में अब भी किसी न किसी रूप में पार्श्वपूजा का प्रचलन हैं: उनमें एक जाति मारंगकुरु (पहाड़ का देवता) की पूजा करती है और पारस नाथ की पहाड़ी को ही मारगकुरू मानती है। बंगाल में आजिमगंज, देउलभीरा और कांटोवोनिया आदि स्थानों पर पार्श्वनाथ की मूर्तियां उपलब्ध हुई है, इससे विदित होता है कि वहां पार्श्वपूजा का प्रचलन था। डा० जगदीशचन्द्र ने 'भारतीय तत्वचिंतन' में लिखा है, 'हजारी वाग जिले में अवसस्थित पार्श्वनाथ की निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर, मानभूम, सिंहभूम और बांकुड़ा आदि जिलों से घिरी हुई है, जिससे मालूम होता है कि यहां की रहने वाली अन्य जातियां पार्श्वनाथ के उपदेशों से प्रभावित हुई थी। ये जातियां अब भी पार्श्वनाथ की उपासक हैं इन जातियों मे पार्श्वनाथ मंत्राधिराष्ट्र देव के रूप में पूजे जाते हैं। हो सकता है कि इसी आधार पर पारसमणी की कल्पना हुई है ऐतिहासिक आधार शिला के विषय में इन्हीं विद्वान ने अपना मत प्रकट करते हुये लिखा हैं।

'पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता का एक पुरातात्विक प्रमाण है मथुरा का कंकाली टीला विख्यात कनिंघम साहब ने सन् १८७१ में इसके पश्चिमी किनारे का उत्खनन करवाया। उसमें बहुसंख्यक जैन प्रतिमाएं प्राप्त हुई कई पर लेख उत्कीर्ण थे कनिंघम साहब को ईंटों की वनी एक दीवाल भी प्राप्त हुई थी। शिलालेखों से उन्हें विदित हुआ ईसवी की पहली दूसरी शती में कंकाली टीला की भूमि पर विशाल जैन-स्तूप और था बाद मे, फ्यूरर को भी वहां ४७ व्यास का एक जैनस्तूप जैन मन्दिरों के अवशेष मिले थें। अभिलेखों से यह स्पष्ट है कि यहां कई शती ईसा-पूर्व से ११ वीं शती तक जैनस्तूप, मन्दिर और मूर्तियों का निर्माण होता रहा फ्यूरर ने एक प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख पढ़ा था थूपे देव निर्मिते इसका अर्थ है मूर्ति की स्थापना देव निर्मित स्तूप में की गई। यह मूर्ति कुशल संवत ७९ (ई० स० १५७) की हैं।

इसी सन्दर्भ में भी जिनप्रभसूरि के 'त्रिविध तीर्थकल्प' की बात कह देना भी प्रासगिक है। सूरजी विक्रम की १४वीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान और तीर्थयात्री थे : उन्होंने भारत के त्रिविध तीर्थों की तीस वर्ष से भी ऊपर यात्रा की . उन-उन स्थानों के सम्बन्ध में जो साहित्यगत या परम्परा श्रुत बातें उन्हें ज्ञात हुई, लिपिबद्ध करते गये : ऐसे ही एक 'मथुरापुरी कल्प' में उन्होंने उपर्युक्त स्तूप को 'देवनिम्मिग्रथूभ' और चतुरशीति महातीर्थ नाम संग्रसकल्प' में महालक्ष्मीनिर्मित: श्री सुपार्श्वस्तूप: लिखा ! महालक्ष्मी का पर्यायवाची हैं—कुबेरा । कुबेर धन का देव माना जाता है। कुबेरा उसकी देवी है। उसने दो साधुओं के चातुर्मास से प्रसन्न होकर, उनकी सविच्छा को पूर्ण करने के लिये इस स्तूप का निर्माण करवाया था। यह स्वर्ण का बना था। और इसमें पचवर्ण के रत्न जड़े थे। 'एक बार भगवान पार्श्वनाथ का समोशरण मथुरा आया, उन्होंने आने वाले दुषमा काल की कठिनाईयों की ओर इंगित किया। फिर, भगवान के अन्यत्र विहार कर जाने पर, कुबेरा देवी ने संघ को आमन्त्रित कर भगवान की भविष्यवाणी से परिचित कराया। उसने यह भी कहा—'मैं सर्वदा जीवित रहकर, इस नग्न स्तूप की रक्षा न कर सकूंगी और आगे के वाले राजा लोभी होंगे, अतः इस स्तूप को ईंटों से ढक देना श्रेयस्कर होगा। संघ के सदस्य बाहर से पार्श्व नाथ की पूजा कर सकेंगे और भीतर संरक्षिका देवी रहेंगी। संघ ने बात को स्वीकार कर लिया और देवी ने वैसा ही किया. ईंटों के अतिरिक्त के बाहर एक पाषाण मन्दिर का निर्माण किया गया और उसमें पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित की गई।

अन्नया पाससामी केवलिविहारेण विहरंतो महुरं पत्तो। समोसरणे धम्मं साहइ। दूपमाणभावं च भाविणं सयासेइ अतो। भगवंते अन्नत्थ विहरिए संघ हक्कारिअ भणिअ कुबेराए. जहा आसन्ना दूसमा पवित्तिआ सामिणा। लोओ राया य लोभग्घत्थ होहिन्त। अहं च चमत्ता न य चिराउसा। तओ उग्घाडयं एय थूभकाल न सक्किस्सामि रक्खिउ। तओ सवाएसेण इट्टाहि छन्नेमि। तुम्हेहि वि बाहिरे पाससामी सेलमइओ पुज्जिअव्वो

जा य अम्ह बइसणाए अन्नावि देवी होही सा अब्भितरे पूर्व करिस्सई। तओ वहुगुण ति अणमन्निम संघेण। देवीए तहे व कयं।

मथुरा पुरी कल्प, विविधतीर्थकल्प, पृष्ठ १८,

मन्दिर के सम्बन्ध में फ्यूरर ने लिखा है कि—वहुत प्राचीन अक्षरों में उत्कीर्ण लेख वाले तोरण के मिलने से यह पता चल जाता है कि ईसा-पूर्व १५० में भी मथुरा में जैन मन्दिर था। विद्वान ईट निर्माण को ईसा पूर्व ६०० वर्ष वताते हैं। उनका आधार हैं—तिव्वतीय विद्वान तारानाथ का कथन, जिन्होंने लिखा कि मौर्यकाल की कला यक्षकला कहलाती थी और उससे पूर्व की कला देव निर्मित कला। अतः यह सिद्ध होता है कि कंकाली टीले का जैनस्तूप कम से कम मौर्यकाल से पहले अवश्य वना था: स्मिथ ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जंनस्तूप एन्ड अदर एन्टीक्यूटीज आव मथुरा' में लिखा कि देव निर्मित शब्द से हम परिणाम पर पहुंचते हैं कि इसका निर्माण ईसा से ६०० वर्ष पूर्व हुआ। यह भारत की सवके पुरानी विल्डिग है

भगवान महावीर के निर्वाण के ३०० वर्ष वाद लगभग ई० सन ७५० में वप्प भट सूरिका जन्म हुआ: उन्होंने तीर्थका जीर्णो द्धार करवाया। पुजा की सुविधा के लिए उपवन कुए और अनेक भण्डारों का निर्माण करवाया। उन्होंने गिरती हुई ईंटों को देखकर स्तूप को मरम्मतके लिए खोलना चाहा, तो देवीने स्वप्न में उन्हें ऐसा करने से रोका फिर उन्होंने स्तूप पर चौकोर पत्थरों का आवरण लगवा दिया।

तओ वीरनाहे सिद्धि गये साहिएहिं तेरसएहिं वरिसाणं बप्पहट्टि सूरीं उप्पण्णो। तेण वि एयं तित्थं उद्धरिअं। पासजिणो पूआविओ। सासय पूअकरणत्थं कोणण कुवकोट्टा काराविआ। सघेण ईट्टाओ खमतीओ मुणित्ता पत्थरेहिं वेढाविओ उक्खिल्ला विउमादत्तों थूपो देवयाए सुमिण तेरे वारिओ न उग्घोडयव्वो एसु त्ति तओ देवयावयणेणं न उग्घाडिओ, सुघडिअपत्थरेहिं परिवेढिओ अ।'

मथुरापुरीकल्प, विविघतीर्थकल्प पृष्ट १८

इतना ही नहीं, भारतीय इतिहास के अनेक ख्याति प्राप्त विद्वान पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं जार्लकार्पेटियर ने 'केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,' जिल्द १ पृष्ठ १५६ पर, 'द हिस्ट्री ऑव जैनाज' में लिखा है प्रोफेसर याकोवी तथा अन्य विद्वानों के मत के आधार पर पार्श्व ऐतिहासिक पुरुष और जैन धर्म के सच्चे स्थापन कर्ता के रूप में माने जाने लगे हैं। कहा जाता है कि महावीर से २५० वर्ष पूर्व उनका निर्वाण हुआ। ये सम्भवतः ईसा-पर्व आठवीं शताब्दी में रहे होंगे।' श्री विमला चरन लॉ ने भी 'इण्डालाजिकल स्टडीज' में, भाग ३, पृष्ट २३६-३७ पर पार्श्वनाथ के ऐतिहासिक पुरुष होने का समर्थन किया है। डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिन्दू सिविलाइ-जेशन' में लिखा है कि—'पार्श्वनाथ ऐतिहासिक पुरुष थे क्योंकि उनके अनुयायी महावीर और बुद्ध के जीवनकाल में मौजूद थे, यहां तक कि महावीर के माता-पिता स्वयं पार्श्व के उपासक और श्रमणों के अनुयायी थे' डा० ए० एम० घाटे ने 'हिस्ट्री एण्ड कल्चर ओफ इण्डियन पोपुल, खण्ड २, 'जैनिज्म' शीर्षक के अन्तर्गत पृष्ट ४१२ पर लिखा है, 'पार्श्व का ऐतिहासिकत्व जैन आगम ग्रन्थों से सिद्ध है।' 'सस्कृति के चार अध्याय' में श्री दिनकर जी का कथन है तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे जो ऐतिहासिक पुरुष हैं और जिनका समय महावीर और बुद्ध दोनों से २५० वर्ष पूर्व पड़ता है।'

पार्श्वनाथ, महावीर से २५० वर्ष पूर्व हुए, ऐसा उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध हैं। किन्तु इस सन्दर्भ मे एक शका उठना सहज स्वाभाविक है—क्या पार्श्वनाथ के जन्म से महावीर का जन्म ढाई सौ वर्ष बाद हुआ, अथवा पार्श्वनाथ के निर्वाण से महावीर का जन्म ढाई सौ वर्ष बाद हुआ अथवा पार्श्वनाथ के निर्वाण से महावीर को केवल ज्ञान ढाई सौ वर्ष बाद हुआ जैन साहित्य और इतिहास के प्रकान्ड पंडित जुगल किशोर मुख्त्यारका कथन है कि ऐसा कुछ नहीं हुआ। सच यह है कि पार्श्वनाथ के निर्वाण से महावीर का निर्वाण ढाई सौ वर्ष बाद हुआ ? अपने समर्थन में उन्होंने उत्तर पुराण का एक श्लोक उपस्थित किया है—

पार्श्वेशतीर्थसंताने पचाशद्‌द्विशताव्द के ।
तदभ्यन्तरवर्त्यायुर्महावीरोऽत्र जातवान् ॥

उत्तरपुराण, ७४।२७६

इसका अर्थ है कि श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर से ढाई सौ वर्ष के बाद, इसी समय के भीतर अपनी आयु को लिये हुए भगवान महावीर हुए। 'तदभ्यन्तरवर्त्यायु:' इसका द्योतक है इसका तात्पर्य हुआ कि पार्श्वनाथ के निर्वाण से ढाई सौ वर्ष वाद हुआ।

अव, मुनि श्री नगराज जी ने अपने नवीनतम ग्रन्थ 'आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, में समस्त सामग्री और विभिन्न परम्पराओं का मन्थन कर निष्कर्ष निकाला है कि महावीर का निर्माण ५२, ई० पूर्व में हुआ। अतः पार्श्वनाथ का निर्वाण—७७७ ई० पू० (५२७ × २५० ई० पू०) सिद्ध हो ही जाता है।

(५)

कमठ का उपसर्ग वढ़ा। कमठ ने जो कुछ करना था किया। जितनी परेशानी वह पैदा कर सकता था उसने पैदा की मगर भगवान का कुछ भी न बिगड़ा सका। अपितु भगवान का मोहनीय कर्म क्षीण हो गया और वैरी कमठ का उपसर्ग दूर हो गया। भगवान पार्श्वनाथ ने द्वीतीय शुक्ल ध्यान से मोहनीय के अलावा अन्य तीन कर्म और जीत लिये।

चैत कृष्ण चतुर्दशी के दिन प्रातः काल के समय विशाखा नक्षत्र में लोक अलोक को प्रकाशित करने वाला केवल ज्ञान प्राप्त हो गया और इस कारण उनका अभ्युदय वहुत भारी हो गया।

इन्द्रो ने भी उनकी आकर पूजा की।

कमठ का जीव जो अव तक शंवर ज्योतिषी के रूप में था उन्हें त्रास पहुँचाता आ रहा था। वह भी समय पाकर शांत हो गया। उसने सम्यकदर्शन सम्वन्धी विशुद्धता प्राप्त कर ली थी।

उसके देखा देखी वन के अन्य जितने भी ऐसे प्राणी थे जो मिथ्या तपस्वी समूह सभी शुद्ध सम्यक दृष्टि वन गये और वड़े आदर के साथ प्रदक्षिणा देकर भगवान पार्श्वनाथ के चरणों में नमित हो गये।

८ | पार्श्वनाथ भगवान का समोशरण

भगवान पार्श्वनाथ का समवशरण एक आदर्श समवशरण था समवशरण में निम्न लिखित उल्लेखनीय था।

गणधर : दस
पूर्व के ज्ञाता : तीन सौ पचास
शिक्षक : एक हजार नौ सौ।
अवधि ज्ञानी : एक हजार चार सौ
केवल ज्ञानी : एक हजार
मन पर्यय ज्ञानि : सात सौ पचास
वादी : छः सौ

इस प्रकार मोक्ष जाने वाले मुनियों की संख्या सोलह हजार थी। उनके समवशरण में सुलोचना आदि को लेकर पच्चीस हजार अर्जकाऐं श्रावक एक लाख, श्रविकायें तीन लाख देव देवियां असख्यात' और त्रियंच गति के जीवों की सख्या शंख तक पहुंची है।

जैसा कि अन्य विद्वान जनों ने उल्लेख किया है कि भगवान पार्श्वनाथ के समवशरण में स्वयंभू को लेकर दस गणधर थे और बारह सभाओं के साथ धर्मोपदेस भगवान ने पांच माह कम सत्तर वर्ष तक विहार किया उनके इस विहार ने पिछड़े संघर्ष शील जनता में कार्य किया कि वह उन्हें कभी भूला नहीं सकती। उनके कल्याण कार्यो को लेकर उनके गौरव और गरिमा को लेकर ढेरों गीतों की रचना हुई। स्तुति के पद बनाये गये। ये पद ये स्तूति भाव प्राणीमात्र के जीवन की पुकार उनके आर्तनाद और धरती पर उनकी मुक्त होने की छटपटाहट को व्यक्त करती है। ऐसे गीतों की संख्या इतनी अधिक है कि गणना तक नहीं की जा सकती। क्योंकि भगवान पार्श्वनाथ एक प्रकार से पहले ऐतिहासिक महापुरुष थे जिन्होंने दोनों दिन दलित और दुखी व्यक्तियों के लिये कार्य किया था और सत्य को राह दिखलाई थी उन्हें

बताया था कि सुख भी दुख है और दुख भी सुख है। क्योंकि वास्तविक सुख सांसरिक न होकर संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं और यह मुक्ती कर्मो के समाप्त होने पर ही सभव होगी उन्होंने इस प्रकार आदिवासियों को बतलाया कि बडा वह नहीं जो बड़े वंश में पैदा हुआ हो जिसके गोत्र में कोई उल्लेखनीय घटना हुई है बल्कि बडा वह है, जो कर्मो सेछूट कर प्रोषधोपवास करके अपना परलोक सुधारते हैं और यथा संभव संसार के आवा गमन से मुक्त हो जाने के लिये संघर्ष शील रहते है।

उनका पावन उपदेश, निर्मल और उज्जवल धर्मोपदेश भी इसी पर आधारित था कि हर प्राणी को अपने मधभव से हटने का पूरा अधिकार है। जन्म सिद्ध अधिकार है तभी तो उनके विषय में कहा गया है...

किल किलंत वैताल, काल कज्जल छवि सज्जहि।
भी कराल, विकराल, माल मगदग जिमि गज्जहि॥
मुड माल गल धरहि लाप, भोपतिन डरहिजन।
मुख फुलिग फुकरहि करहि निर्दय धुति हत हत॥
इह विधि अनेक दुर्वेष धरि, कमठ जीव उपसर्गकिय।
तिहलोक वंद जिनचन्द प्रति, धूलि डाल निज सीस लिय॥

भक्तिरस से भरपूर इन पदों में अपार मुक्ति, अपार श्रद्धा, और अपार विश्वास व्यक्त होता हैं।

श्री पद्मपरम मलधारी देव का प्रभु पार्श्वनाथ स्तोत्र भी वड़ा मनोहारी है इसमें उन्होंने ऐसी मनोहरी रचनायें की हैं, जिसमें मागेन्मेष की अपार शक्ति और भाषा भी भावानुरूप शोभा भी हैं और अलन्कारों का विविध प्रयोग किया है। एक पद उल्लेखन है।

यद्विश्वलोकैक गुरू गुरू गुरू
विराजिता मेंत वरं वरं वरं
तमालनीलांग भरं भरं भरं
पार्श्वफणेराम गिरो गिरो गिरो॥
संरक्षितो दिग्भूवनं वनं वनं

विराजिता येपु दिवै दिवै दिवै
पादद्वयंनूत सुरा सुरा सुरा
पाश्वफणेराम गिरौ गिरौ गिरो ॥
रराज नित्यं सकला कला कला
ममार ब्रह्मो वृजिनो जिनो जिनो
संहार पूज्यं वृषभा सभा सभा
पार्श्वफणेराम गिरौ गिरौ गिरौ ॥
लक्ष्मीर्महस्कल्प सती सती सती
प्रवृद्धकालो विरतो रतो रतो
जरा रुजा जन्म हता हता हता
पार्श्वफणेराम गिरौ गिरौ गिरौ ॥

और साधारण जनता भगवान पार्श्वनाथ पर अपार श्रद्धा रखकर कवि के इन भावों को गुनगुना पड़ती है:—

पतित पावन नाम तेरो
अहो प्रभु कर्म फेरयो तत मेरों ।
हों पतित तुम पतित उधारन
लाज तिरत का वेरो ॥ पतित० ॥
और पतित अनेक उधारे
अद्ध नाम कियो जू निवेरो ।
पाते सरन पारस अव तेरो
तू साहिब हों चेरो ॥ पतित० ॥

अर्थात : हे प्रभु आप पतित पावन है और मैं कर्मों से घिरा हूँ। मैं पतित हूँ आप पतितो का उद्धार करने वाले हो पर आपकी प्रतीक्षा निभाने का समय हैं। आपने अनेक पतितो का उद्धार किया है। आपके नाम ने ही उन्हें भव समुद्र से पार लगा दिया हैं। इसी कारण हे भगवान मैं आपकी शरण में आया हूँ।

एक और गीत में कवि ने कहा है कि देश देशान्तर में दौड़ना फिरना, देव और इन्द्र को रिझाने की कोशिश करना बेकार है। देवी देवता को मानना, सूर्य चन्द्र को नमस्कार करना अथवा किसी और की खुशामद करना व्यर्थ है। केवल भगवान

का ध्यान करने से सारी चिन्ताओं से मुक्त हो जाओगे :—

काहे को देश देशान्तर धावत, काहे रिझावत इन्द्र नरिंद ।
काहे को देवि ओ देव मनावत, काहे को नवावत चन्द ॥
काहे को सूरज सों कर जोरत, काहे निहोरत मूठ मुनिन्द ।
काहे को शौच करे, दिन रेन तू, सेवत क्यों नहीं पार्श्व जिनंद ॥
(संदर्भ—ब्रह्मदापनी : भगवती दास भैय्या)

कवि धानत राय कृत पार्श्व नाथ स्त्रोत के भगवान पार्श्वनाथ नाग नागिनी नर, बागों और देवी गणधरों से शत-शत वार पूजित है। उन्होंने ही शेर से हाथी को बचाया था। उन्होंने ही आग में जलते नाग दम्पति को बचाया था युद्ध मे महान वीर व्यक्ति से भगवान पार्श्वनाथ ही जिताते हैं और भयकर रोगों के बन्धन भी यही काटते है वे कल्पवृक्ष हैं, कामधेनू हैं ! वे ही दिव्य चिंतामणी है और वे ही है नाग दम्पति के रक्षक।

भगवान पार्श्वनाथ ही पशु योनि और नरक योनि के भावों से छुड़ाकर महान् स्वर्ग और मोक्ष की ओर ले जाता है !

इसका मूल इस प्रकार है:—

भगवान तो ससार को पार लगाने वाले हैं, उनकी वन्दना को करते हुए कुछ स्लोक प्रस्तुत हैं :—

(ए)

नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीसं
सतेन्द्रं सु पूजैं भजैं नाय शीसं ।
मुनीन्द्रं गणेन्द्रं नमो जोडि हाथ
नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथ ॥१॥
गजेन्द्रं मृगेन्द्रं गह्यो तू छुडावै
महा आगतैं नागतैं तू बचावै ।
महावीर तैं युद्ध में तू जितावै
महारोग तैं बंधतैं तू छुड़ावैं ॥२॥
तुही कल्पवृक्ष तुही कामधेनु
तुही दिव्यचितामणी नाग एनं ।
पशु नर्क के दुःख तैं तू छुडावै
महास्वर्ग तैं मुक्ति में तू वसावै ॥३॥

ऐसा ही रूप इस पाप में व्यक्त किया गया है:—

(बी)

तुम प्रभु अधम अनेक उधारें, ढील कहा हम बारो जी ॥
तारन तरन विरद सुन आयो, और न तारणहारो जी ।
तुम बिन जनम मरण दुख पायो, कर्म न आवै पारो जी ॥तुम प्रभु०
मो गुण अवगुण प्रति मन जावौ, अपनी ओर निहारो जी ।
अंजन से पल मैं ही तारे और कहा अधिकारो जी ॥ तुम प्रभु०॥
मैं विनती करहुं त्रिभुवनपति, मेरो संवारो जी ।
चंदखुस्याल सरन चरनन की सो भवपार उतारो जी ॥तुम प्रभु०॥

(संदर्भ—खुशालचन्द काला पार्श्वजिनस्तुति है लि. प्र. बड़ौत)

भुविज-दिवज पति दनुज दिनेसर सेवितपद अरविन्दा ।
कहत कुमुदचन्द होत सबै सुख देखत वामानन्दा ॥आजु०॥

(कुमुदचन्द्र, पदसंग्रह, ह. लि. प्र. जयपुर)

(क) करम भरम जग तिमिर हरन खग,
उरग-लखन पग शिव मग दरसी ।
निरखत नयन भविक जल बरखत,
हरखत अमित भविकजन सरसी ॥

(ख) मदन कदन जित परम धरम हित,
सुमिरत भगत भगत सब डरसी ।
सजल जलद तन मुकुट सपत फन,
कमठ दलन जिह नमत बनरसी ॥

(वनारसी दास)

(ग) पारस-पद-नख प्रकाश, अरून वरन ऐसो ॥टेक॥
मानों तप कुंजर के, सीस को सिंदूर पूर,
राग दोष कानन कों, दावानल जैसो ॥पारस०॥
बोधमई प्रातःकाल ताको रवि उदयलाल
मोक्षवधू कुचप्रलेप, कुंकुमाभ तैसो ॥पारस०॥
कुशलवृक्ष दल उलास, इहि विधी बहु गुणनिवास,
भूधर की भरहु आस, दीन दास के सो ॥पारस०॥

(भूधरदास, भूधरविलास, बम्बई)

(घ) शेष सुरेश रटें तोहि, पार न कोई पावें जू ॥ टेक॥
काये नपत व्योम विलसत सौं, को तारे गिन लावें जू ॥शेष०॥
कौन सुजान मेघ बूंदन की संख्या समझि सुनावें जू ॥शेष०॥
भूधर सुजस गीत सम्पूरग, गनपति भी नहीं गावें जू ॥शेष०॥
(भूधरदास, भूधरविलास, बम्बई)

(ङ)इन्द्रादि जन्मस्थान जिनके, करन कनकाचल चढ़े।
गन्धर्व देवन सुयश गाये, अप्सरा मंगल पढ़े॥
इहि विधी सुरासुर निज नियोगी, सकल सवाविधी ठही।
तो पार्श्वप्रभु मो आस पूरो, चरन सेवक हों सही ॥
भूधरदास, 'तुम तारन तरन भव निवारन भविक मन आनन्दनों विनती)

(च)देहो जिनराज देव सेव मोही अपनी।
देत जो सुबुद्धि कौं कुबुद्धि की उथापिनी॥
हौं तो महापातगी कहो न अस सातिगी।
सुनि है तेरी भक्ति जो अनेक पाप नासनी ॥देहो जिन०॥
विसनादिक वासना चकात तो उपासना।
सुवासना सरूप ताहि भक्ति की चुचागिनी ॥देहो जिन०॥

(छ) जपो जिन पार्श्वनाथ भवतार।
अश्वसेन बामा कुल मण्डल बाल ब्रह्म अवतार ॥जपो०॥
नीलमणि सम सुन्दर शोभे, बांध सुकेवलधार।
नवकर उन्नत अंग अतिदीपे, आवागमन निवार ॥जपो०॥
जनम जरा मृत दुख निवारण, तारण भवपदविकार।
विबुध वृंद सेवे शिरनामी, पालै पंचाचार ॥जपो०॥
कलियुग महिमा मोटी दीसे, जिनवर जगदाधार।
मानव मनवांछित फल पावे, सेवक जन प्रतिपाल ॥जपो०॥
सिद्ध स्वरूपी शिवपुर नायक, नाथ निरंजन सार।
शुभ चन्द्र कहे करूणा कर स्वामी, आपो संसार पार ॥जपो०॥

और यह भगवान स्तुति उस पावन परम पार्श्वनाथ की उस महत्ता के प्रतीक है, जिनका गौरव आज भी है और उस वक्त तक कायम रहेगा जब तक एक भी प्राणी इस भवमय जाल में फंसा हुआ है।

९ | उपसंहार

भगवान पार्श्वनाथ के जीवन में महत्वपूर्ण है श्रावण शुक्ला सप्तमी का विशाखा नक्षत्र। तब वे शुक्ल ध्यान के तीसरे और चौथे भेदों को लेकर अनुक्रम से तेरहवें और चौदहवें गुण स्थान में स्थित थे और तेजी से कर्मों का क्षय हो रहा था।

बिहार बन्द किये एक मास हो गया था। सम्मेद शिखर की पावन धरती पर प्रतिभा योग धारण करके विराजमान हो गये थे और कभी के मरूभूति वज्रघोष शिमवेग सुभौमकुमार और अब भगवान पार्श्वनाथ संसार के भवों, जन्मों के आवागमन से छूटकर निर्वाण को प्राप्त हो गये। वे वन्दनीय हो गये और उनका स्मरण आते ही कर्मों के समाप्त होने की स्थिति पैदा हो गई। उनके निर्मल गुणों में समृद्ध होने के कारण ही सब भगवान पार्श्वनाथ की वन्दना करते हैं। वे समुद्र के समान आदि तथ्य और अन्त में गम्भीर रहे। उनकी स्तुति करते हुये कहा गया है—

हे भगवन पार्श्वनाथ स्वामी—
जब आपका जन्माभिषेक सुमेरू पर्वत पर हुआ था
तो आपके सांस लेने और निकालने पर
इन्द्रों को डगमगा दिया था
फिर बेचारे संवर नामक ज्योतिष देव की क्या हस्ती

□

उसने तो समुद्र में रहने वाले मत्स्य की भांति
उछल कूद मचाई थी, जो समुद्र में एक पल भी
अलग नहीं रह सकता, मगर निरन्तर ही उसमें उछल कूद
मचाता रहता है।

□

देव ! आपका ज्ञान अक्षय है और निर्मल भी। उसको समुद्र की संज्ञा देना भी व्यर्थ है क्योंकि समुद्र तो अन्धड़ और तूफान आने पर चंचल हो उठता है। और उसमें जो पानी है। और उसमें जो पानी है उसका रंग भी नीला है इस प्रकार समुद्र भगवान पार्श्वनाथ के नाम की उपमा के लिये सर्वथा उचित नहीं है।

देव आप सुमेरु पर्वत की भांति अचल हैं। आप में जो सबसे बड़ा गुण है वह सबको सन्तुष्ट करने की क्षमता। आपने संवर की सभी विक्रिया दूर कर दी, आपका महत्व और शान्ति आश्चर्य जनक है। कानों को सुख देने वाले, हृदय को प्रिय लगने वाले हित करने वाले भगवान पार्श्वनाथ जगत वन्दनीय है।

इस प्रकार की वन्दना से अभिभूत भगवान पार्श्वनाथ का मंगलमय चरित्र यहा एक विश्राम लेता है। जब तक कर्मों का आवागमन है, जीव भवजाल में फंसे हैं, भगवान पार्श्वनाथ का पावन चरित्र दुखी हृदयों मे सदैव उत्साह वर्धक, और सद व्यव-हार और सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान सम्यक चरित्र के लिये प्रेरित करता रहेगा। तभी तो कहा गया है कि भगवान का चरित्र धर्म रूपी श्वेत छत्र है जिसके नीचे सभी शरण अशरण आकर शरण लेते हैं। सबके मन को निर्मल करने वाली, सत्य तथा सबका उपकार करने वाली आपकी दिव्य ध्वनि यूं तो सब को सन्तुष्ट करती है। मगर दुर्जन लोग उसे कभी नहीं सुनते। अगर वे भी इसका स्मरण करें तो निश्चित रूप से वे दुर्जन नहीं नहीं रहेंगे उनके पाप कर्म समाप्त हो जायेंगे और वे भी मोक्ष मार्गी भव्य जीवों के दल में शामिल हो जायेंगे। भगवान पार्श्व-नाथ की वन्दना करते हुये कवि हीरा चन्द ने इसी ओर संकेत किया है—

तारण तरण जहाज, स्वामी महाराज
अन्यदेव में वहुत हि सेये
सर्यो एक न काज

अब मैं प्रभु तुमभेद पिछान्यो
इन भव अवर न काज ।।स्वामी०।।
शीस नवाय मैं तोकू पुकारन
सुनियें प्रगट अवाज ।।स्वामी।।
पारसमणी थे हीरा चन्द्र के
शरण गहे की रखो लाज ।।

प्रभु की महिमा अपार है। वे अधर्म की भी नवभ बाधा से बचाने की सामर्थ रखते हैं। अधमों के उद्धार करने वाले, संसार रक्षक भगवान पार्श्वनाथ का उत्तम मन वचन काय से स्मरण ही सैकड़ों भवभय बाधा समाप्त कर देता हैं। कवि किशन चन्द की भाव विधोक स्तुति हमें इसी बात की याद दिलाते हैं।

स्वामी परस प्रभु कानै पूज्या जी पातिगं जाय ।।स्वामी ।।
अष्ट द्रव्य करि जे नर पूजे
सुन मन वच काय।
इन्द्र चन्द्र चक्री की सम्पत्ति
तुम पूजे तो पाये ।।स्वामी।।
तुम ज्यन्त वे मानुष हो है
श्रावक कुल में आय,
मत संगति अटन भगनि निहारी
भवभय में ये पाप ।।स्वामी।।
अधम अधार जगत के त्राता
तुम बिन और न साथ
किशन चन्द तुम इम जांचत है
जामन मरन मिटाय ।।स्वामी।।

और ये हैं अचल कीर्ति की भक्ति का अतिरेक पावन स्तोत्र :
उपसर्ग हरत तुम नाग अमोल
मत्र जंत्र तुम हि मन फोल।
जैसे वजर पर वत हार
तुम नाम मंत्र हो निवाय हार ।।
नाग दमण तुम नाग सहाय
विषधर विष नासन राय ।।

तुम सुमरें भव जो चित लाय ।
विप पीवे अमृत हो जाये ॥
नाम सुधार रखे जहा
पाप पंक यत्न नासै तहां ।
जैसे पारस वैंमे लोह
तुम गुनत रंचन सम हो हि ॥

पार्श्वनाथ का चरित्र कितना पावन है, उसको ये अ
शब्द व्यक्त नहीं कर सकते । नाही वो जन २ के प्राणी मात्र को
मोक्ष तक पहुँचाने वाला पावन चरित्र एक छोटी सी पुस्तक में
संजोया जा सकता है कुन्डल पुर के राजकुमार के बाद लिखी यह
दूसरी पुस्तिका मेरे उन प्रयत्नों का साधारण प्रतिपाल है जो
भगवान वर्द्धमान महावीर की २५ वीं निर्वाण शताब्दी समारोह
के अन्तर गत प्रकाशित गौरव ग्रन्थ माला में इसका पुष्प है । यह
एक अल्प ज्ञान का प्रयास मात्र है यहां अल्प ज्ञान किसी भी प्रकार
की गलती उत्पन्न कर सकता हैं विज्ञ जनों से प्रार्थना है कि कृपय
इसे सुधार कर पढ़ेगे मेरा आभार उन सभी विद्वानों धर्म उपदेश
और ग्रन्थकारों के प्रति हैं जिनका मैं अनजाने में उल्लेख नहीं कर
पाया धर्म उपदेश महापुरुष का पावन चरित्र मेरे अनुसार प्राणी
मात्र की सम्पत्ति है अतः उसका उपयोग करने में अपने को
स्वतन्त्र मानते हुये भी मैं विनम्रता से उन सभी का आभारी हूं
जिनके कारण यह पुस्तक रची गई और जो अगली पुस्तकों के
लिखने में सहायक होंगे । इसी क्रम में अगले प्रकाशन होंगे : □
जैन धर्म और उसका सिद्धान्त अहिंसा परमो धर्म ! तो अगली
पुस्तक तक के लिये आज्ञा दीजिये ।